लेखकः—

प्रि० बन्सीधर सम्पादक—हिन्दी शिक्षण पत्रिका—

व

अमरनाथ गुप्त, एम. ए., एल. टी.

प्रि० एस० डी० इन्टर कालेज,

सहारनपुर ।

—o—

प्रकाशकः—

गौतम बुक डिपो

नई सड़क, देहली ।

प्रथम बार] १९४७ [मूल्य २॥)

मानव जाति की फुलवारी

के

एकमात्र आशा कुसुम

बालक

के

नन्हें हाथों में

अर्पित ।

ध्यो -

*
**
***
****

जब तू प्रभु नहीं है तो बालकों का प्रभु क्यों बनता है ?

जब तू सर्वज्ञ नहीं है तो बालकों की अल्पज्ञता पर क्यों हंसता है ?

जब तू सर्वशक्तिमान नहीं है तो बालकोंकी अल्पशक्ति पर क्यों चिढ़ता है?

जब तू सम्पूर्ण नहीं है तो बालकों की अपूर्णता पर क्षुब्ध क्यों होता है?

पहले तू अपनी ओर देख फिर अपने बालकों की ओर देख ।

"गिजु भाई"

****
***
**
*
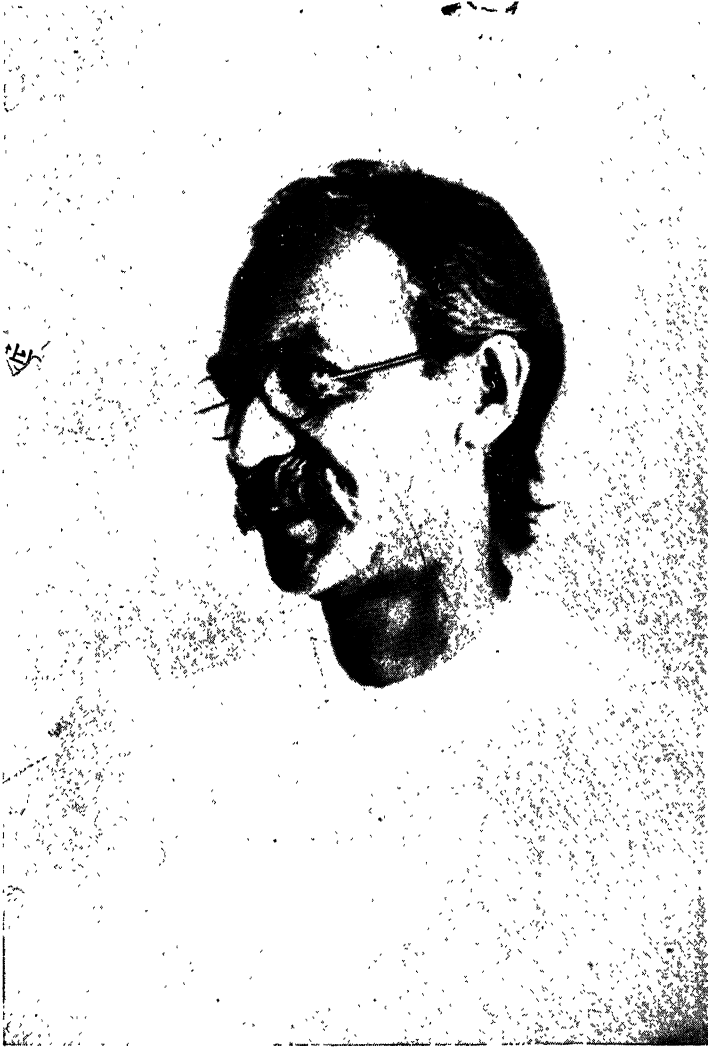
स्वतन्त्र बाल शिक्षण के प्रवर्तक स्व० आचार्य गिजुभाई

पुस्तक में क्या है

आज भारतवर्ष के ही नहीं अपितु समस्त संसार के राजनैतिक और सामाजिक जीवन में भयानक उथल-पुथल मची हुई है। अपनी अपनी क्रूर अभिलाषाओं की बलिवेदी पर अमीर ग़रीबों की, बलवान् निर्बलों की, बड़े छोटों की और अपनी सभ्यता का ढिंढोरा पीटने वाले असभ्यों की खुले आम निर्मम बलि चढ़ा रहे हैं। स्वार्थान्ध मानव आज दूसरों के हितों को रौंद कर उन्मत्त पशु की भांति इठलाने में अपना गौरव समझता है। जातीयता और सभ्यता के नाम पर आये दिन डट कर खूनी होली खेली जाती है। फलतः चारों ओर भयानक अशान्ति, हत्याकाण्ड, लूट-खसोट, असन्तोष, अविचार, अनाचार आदि का बोल बाला है। सारांश यह कि मानव समाज की आज बड़ी भयावह स्थिति है।

मानव समाज को सुधारने के अनेक प्रयत्न किये जा रहे हैं। लेकिन नतीजा कुछ भी नहीं निकलता। धर्माचार्यों के तत्त्वज्ञानपूर्ण उपदेशों, धर्मशास्त्रों के पठन-पाठन और समाज के कर्णधारों के ओजस्वी भाषणों के बावजूद भी आज का मानव-समाज निरन्तर पतन की ओर अग्रसर हो रहा है। आज के रोग-ग्रस्त और विकृत समाज को सुधारने का, ऊँचा उठाने का केवल एक ही साधन है और वह है—"बालक"। बालक की उपेक्षा करके ही हमने अपना यह सर्वनाश किया है। बालक को अपनी स्वार्थ सिद्धि का साधन बना कर ही हमने दुनियां में अशान्ति फैलाई है, युद्धों को जन्म दिया है और खून की नदियाँ बहाई हैं। बालक को अपने विचारों के अनुसार चलने के लिये विवश करने के बजाय हमें उसके बताये हुए मार्ग पर चलना

होगा। बालक के अपना स्वयं विकास करने के लिये स्वतन्त्र वातावरण प्रस्तुत करना होगा। स्वतन्त्र वातावरण में पला हुआ बालक ही हमारी विविध राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय जटिल समस्याओं को हल कर सकता है, तथा सीधा और सरल रास्ता दिखा सकता है। इसलिये बालक के सम्बन्ध में अब हमारा मूल-मन्त्र यह होना चाहिए—"मैं नहीं, तू है।"

इस पुस्तक में बालक की अपरमित शक्तियों और महत्ताओं पर प्रकाश डालते हुए यह दिखाने का नम्र प्रयास किया गया है कि शिक्षा, जीवन और विश्व-सम्बन्धी हमारी समस्त गुत्थियां बाल-मानस और बाल विकास के अध्ययन एवं अनुशीलन से सहज ही में समझी और हल की जा सकती हैं। अतः यह पुस्तक केवल माता-पिता और शिक्षक के लिए ही नहीं, बल्कि प्रत्येक मनुष्य के लिये आवश्यक और लाभ-दायक है।

अन्त में हम उन सब विद्वान और अनुभवी शिक्षा शास्त्रियों को हार्दिक धन्यवाद देते हैं, जिन्होंने अपने अनुभव पूर्ण लेख भेज कर हमें मानव समाज के भावी नेता—बालक की सेवा करने का मौका दिया है। उनके सहयोग के बिना हम इतनी जल्दी इतनी सुन्दर पुस्तक पाठकों के सामने उपस्थित नहीं कर सकते थे। हम उन सब महानु-भावों को भी धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते, जिनके द्वारा इस पुस्तक में दिये गये सभी सुन्दर चित्र हमें प्राप्त हुए हैं। हम श्री धर्म-पाल जी शास्त्री व श्री ओमप्रकाश जी मित्तल एम० ए० के भी आभारी हैं, जिन्होंने अनुवाद आदि कार्य में हमारी सहायता की है।

अगर यह पुस्तक बालक के प्रति एक भी पाठक की मनोवृत्ति में परिवर्तन कर सकी, तो हम अपने प्रयत्न को सफल समझेंगे।

१-११-१९४६ —सम्पादक

डाक्टर मोन्टीसेरी–बाल उत्थान की [illegible]ता

डाक्टर मेरिया मोन्टीसोरी जो गत चालीस वर्ष से बालक की जी-जान से सेवा कर रही हैं । आपने परीक्षणों और खोजों द्वारा सिद्ध कर दिया है कि जन्म से छः वर्ष का समय जीवन-विकास के लिये अत्यन्त बहुमूल्य और महत्त्वपूर्ण है ।

विषय सूची

क्रान्ति का मूल स्रोत-बालक।

क्रान्ति का मूल स्रोत बालक

आज दुनियां के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक स्वतन्त्रता की लहर दौड़ गई है। जहां तहां उथल पुथल मची हुई है। जहां जाओ, जहां देखो, सभी जगह स्वतन्त्रता की चर्चा है। परतन्त्रता और परवशता का जुआ उतार फैंकने के लिये सभी कटिबद्ध दिखाई देते हैं। व्यक्तित्व को नष्ट करने वाली पाबन्दियों और बन्धनों से सब ऊब गये हैं। अन्याय, अत्याचार, अपमान, अनादर सहन करने के लिये कोई तैयार नहीं है। सदियों से पद दलित और पीड़ित जातियां अपनी कुम्भकरणी नींद से जाग रही हैं। घर की चहार दीवारी में बन्द रहने वाली स्त्रियां भी अपने अधिकारों के लिये जद्दोजहद कर रही हैं। परन्दे और बुरके में बन्द न रह कर वे भी अपना उत्थान और विकास करना चाहती हैं। युवक भी बड़ों के चंगुल से छुटकारा पाने के लिये संगठित हो रहे हैं। भेड़ बकरी का सा जीवन विताने सीधे सादे किसान-मजदूर भी हाथ पर हाथ धर कर नहीं बैठे हैं। अपनी स्वाधीनता के लिये वे भी प्रयत्नशील हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये सभी सिर-धड़ की बाजी लगा रहे हैं। अब अधिक समय तक कोई किसी को गुलाम बना कर नहीं रख सकता। हां में हां मिलाने और 'जी हजूरी' का युग अब बीत गया।

लेकिन बड़े दुःख के साथ कहना पड़ता है कि बालक की स्वतन्त्रता का सवाल जब हमारे सामने आता है, तो हम आंखें दिखाने लगते हैं, नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं, जैसे बालक का कोई अस्तित्व ही नहीं है। यह कितने आश्चर्य और लज्जा की बात है कि जिस बालक को हम अपना सर्वस्व मानते हैं, जिसके लिये हम भारी से भारी त्याग कर सकते हैं, उसकी स्वतन्त्रता का हम विचार ही नहीं करते ! बालक के साथ इतना अन्याय ! इतना जुल्म !

बालक को हम आज भी निर्बल, निस्तेज, तुच्छ और हीन समझते हैं। उसकी इच्छाओं, आवश्यकताओं और सुविधाओं का हम जरा भी ख्याल नहीं करते। उसकी रुचि-अरुचि की ओर ज़रा भी ध्यान नहीं देते। उसे कठोर नियन्त्रण और अनुशासन में रखते हैं। उसे किसी प्रकार की स्वतन्त्रता नहीं देते। न वह आजादी से घूम फिर सकता है और न आजादी से खा पी सकता है। उसे रात दिन बड़ों के आदेशों और इशारों पर कठपुतली की तरह नाचना पड़ता है, बिना चूँ-चरा के उनकी जा-बेजा सभी आज्ञाओं का पालन करना पड़ता है। बड़ों के खिलाफ मुंह खोलना अक्षम्य अपराध समझा जाता है। घर में बालक की कोई आवाज नहीं, कोई अधिकार नहीं, कोई राय नहीं। बड़ों की हां में हां मिलाना मानो बालक का परम कर्तव्य है। जरा सी गलती हो जाने पर बालक पर आफत का पहाड़ टूट पड़ता है। बुरी तरह फटकार पड़ती है, चपत लगते हैं। ऐसी दशा में आदर-सत्कार की तो बात ही क्या ? उफ ! घर में ही बाल देवदूत की यह दुर्दशा ! इतना अपमान !

शाला में भी बालक को कोई राहत नहीं मिलती। वहां तो बालक की घर से भी बुरी दशा होती है। उसकी कल्पना करके तो रोमांच हो आता है। आज की शाला बालक के लिये नहीं बल्कि बालक शाला

के लिये है। वहां शिक्षक का ही बोलबाला है, वही सत्ताधीश है। रटा रटा कर बालक का दिमाग खराब कर दिया जाता है। पाठ समझ में आये चाहे न आये, बेचारे बालक को शिक्षक के डण्डे से अपनी जान बचाने के लिये किसी न किसी तरह तोते की तरह रटना ही पड़ता है। अगर कहीं सबक याद नहीं हुआ तो मार-मार कर बालक का कचूमर निकाल दिया जाता है। "गुरु जी की चोट और विद्या की पोट" शाला की सर्वोत्तम शिक्षा-प्रणाली है। ठूंस-ठूंस कर बालक के दिमाग में ज्ञान भरना शिक्षक अपना परम कर्तव्य समझते हैं। मेरे प्रिय मित्र धर्मपाल शास्त्री के शब्दों में आज के शिक्षक का मूल-मन्त्र यह है—

"भरो ठोंक कर, ठूंस ठूंस कर भर पाओ जितना भी।
बच्चों के मस्तिष्क न खाली रहने पांय जरा भी॥
अखिल विश्व के ज्ञान-कोष से बालक रहें न बञ्चित।
कौन काम आयेगा शिक्षक! ज्ञान तुम्हारा सञ्चित॥"

ऐसी प्राण घातक शाला में बालक क्या खाक अपना विकास कर सकता है! यह शाला नहीं जेलखाना है, जहां बालक का दम हर दम घुटता रहता है। घर और शाला की तरह समाज में भी बालक के लिये कोई स्थान नहीं। संस्था में सब के लिये नियम-कायदे बनते हैं, लेकिन बालक के लिये कोई नियम कायदा नहीं। उसे माता-पिता और शिक्षकों की दया पर छोड़ दिया गया है। वही उसके भाग्य-विधाता हैं। यही कारण है कि बालक संसार के विस्मृत व पद-दलित नागरिक हैं। क्या इससे यह स्पष्ट नहीं हो जाता कि बालक के महत्व को हमने समझा ही नहीं। मुझे यह कहते जरा भी संकोच नहीं होता कि मानव-समाज की आज जो अधोगति हो रही है, उसका मुख्य कारण बालक के साथ किये जाने वाला हमारा दुर्व्यवहार है। गड्ढे

में पड़े हुये मानव-समाज को अनुप्राणित करने का केवल एक ही उपाय है और वह है बालक। यदि मानव समाज को उन्नति के शिखर पर आरूढ़ करना है, दुनियां में शान्ति स्थापित करना है, तो हमें बालक को समझना होगा, उसका सम्मान करना होगा।

बालक विपथगामी, नासमझ और निर्बुद्धि नहीं है। बालक कोरा कागज, खाली बर्तन या मिट्टी का ढेला भी नहीं है जिसे हम जैसा चाहें बना सकें। बालक अद्भुत शक्तियों का भण्डार है, सद्गुणों की खान है। उसकी शक्तियों और गुणों की कोई मर्यादा या सीमा नहीं है। मिस्टर होम्स ने बिलकुल ठीक लिखा है कि "प्रत्येक नव-जात शिशु में ईसामसीह छिपा हुआ है। मनुष्य जन्म से ही खराब होने के बदले जन्म से ही ईश्वर बनने की शक्ति लेकर पैदा हुआ है।" विद्वानों, विचारकों, तत्ववेत्ताओं, शिक्षा-शास्त्रियों और मानस-शास्त्रियों ने मुक्त कण्ठ से बालक की प्रशंसा की है और उसकी महिमा का बखान किया है। प्राचीन काल के एक महान आचार्य ने तो यहां तक लिख दिया है कि "जो कोई भी इन नन्हों पर अत्याचार करता है, उचित हो चक्की का पाट गले में डाल कर उसे समुद्र में डुबो दिया जाय।"

बालक एक स्वतन्त्र व्यक्ति है। अपना विकास आप करने की उसमें शक्ति है। जान लॉक लिखता है—"बालक भी हमारी तरह स्वतन्त्र है। जिस तरह बड़े बूढ़े स्वतन्त्र हैं, उसी तरह बालक भी स्वतन्त्र है। वे जो कुछ अच्छा करते हैं सो सब अन्तः स्फूर्ति से ही करते हैं। वे स्वाधीन और सम्पूर्ण हैं। आपको जो पसन्द हो, वह अगर बालक को पसन्द न हो, उसमें उसकी रुचि न हो, तो वह काम उससे कभी न करवाइये। सिखाने के विषयों की अपेक्षा सीखने वाले का महत्व अधिक है। क्या सीखना और क्या न सीखना, इसका निर्णय सीखने वाले को ही करना चाहिये सिखाने वाले को नहीं। बच्चों

के रहनुमा बनने की अपेक्षा उनका अनुकरण करने वाले बनो।" रूसो के शब्दों में—"जन्म से मनुष्य सदैव स्वतन्त्र है। स्वतन्त्रता मनुष्य का लक्षण है। पूर्ण मनुष्यत्व उसमें है जो दूसरों के दिये हुये प्रमाणों या सम्मतियों से आन्दोलित हुये बिना स्थिर रहता है, अपनी ही आंखों से देखता है, अपने ही हृदय से अनुभव करता है और जो केवल स्वतन्त्र प्रजा का ही अधिकार स्वीकार करता है। इसलिये शिक्षा का प्रबन्ध ऐसा होना चाहिये कि जिसके फल स्वरूप मनुष्य अपना स्वाभाविक विकास कर सके और जीवन के चाहे जैसे विकट वाह्य प्रसंगों में भी केवल अपनी वृत्ति का अनुकरण करके जीवन बिता सके। अतः बालक पर शारीरिक, बौद्धिक, किसी भी प्रकार का दबाव हमें नहीं डालना चाहिये। उसे जो कुछ भी सीखना है, वह जीवन और प्रवृत्तियों से सीखना है। ऊपर से उस पर हम कुछ लाद नहीं सकते।" जान लॉक और रूसो की तरह बाल-शिक्षा के प्रवर्तक पेस्टेलाजी और फ्रूबल ने भी बालक के महत्व पर खूब प्रकाश डाला है। दोनों ही बाल देवता के पुजारी थे। बाल सेवा ही उनके जीवन का ध्येय बन गया था। एक दुनियांदार के सवाल का जवाब देते हुए पेस्टेलाजी ने कहा था—'जी हां मैं बच्चा ही हूँ और मरते दम तक बच्चा ही रहना चाहता हूँ। आपको क्या बताऊं कि बालक बने रहने में दिल को कैसी राहत मिलती है। फ्रूबेल का भी यही हाल था। बालक पर होते अत्याचार को देख कर आप रो पड़ते थे। किंडर गार्टन पद्धति का आविष्कार आपने ही किया था। बालक का अपमान आप सहन नहीं कर सकते थे। आप कहा करते थे कि बालक गुण्डा और शैतान नहीं होता। अगर बालक में कोई बुराई है तो उसके लिये बालक नहीं, बड़े जिम्मेवार है। गांधी जी के बाल-प्रेम को कौन नहीं जानता। आपने एक बार लिखा था कि बालक स्वभाव से ही निर्दोष, उदार

और प्रेमी होता है। उसकी शरारत में भी निर्दोषिता होती है। स्व० कविवर रवीन्द्रनाथ तो बालकों पर लट्टू ही थे। डाक्टर मोन्टीसोरी से बातचीत करते समय उन्होंने एक बार कहा था—"अब मैं बाल-गृह में प्रवेश करना चाहूँगा, क्यो कि वह स्त्रोत है, नींव है।"

आज तो बालक का और भी गहराई से निरीक्षण और अध्ययन किया जा रहा है। उन्नतिशील देशों ने बालक के महत्व को खूब समझ लिया है। बालक के विकास के लिये वहां दिल खोल कर रुपया खर्च किया जाता है। अनुसन्धान के लिये प्रयोगशालाएँ खुल रही हैं। बड़े-बड़े मानस-शास्त्री-बाल-मानस के अध्ययन में लगे हुये हैं। बालक के विषय में उन्होंने जो खोजें की हैं, वे अत्यन्त महत्वपूर्ण और आश्चर्यपूर्ण हैं। जगत-विख्यात डाक्टर मोन्टीसोरी ने इस दिशा में जो काम किया है, वह बाल शिक्षा और बाल-विकास के इतिहास में सदा अमर रहेगा। इन्होंने बालक का गर्भावस्था से लेकर सूक्ष्म निरीक्षण किया ह। बालक कैसे बढ़ता है, कैसे वृद्धि पाता है, इस बीच में वह क्या क्या क्रियाएँ करता है और किस प्रकार अपना विकास करता है आदि बातों का शास्त्रीय ढंग से पूर्ण अध्ययन किया, जिसके फल-स्वरूप इनके बालक-विषयक विचारों में अद्भुत परिवर्तन हुआ। बालक से यह इतना प्रभावित हुई कि इन्होंने अपना सारा जीवन ही बाल-सेवा में लगाने का निश्चय कर लिया। गत चालीस वर्ष से डाक्टर मोन्टीसोरी जी जान से इस काम में जुटी हुई हैं। इनके नवीन और क्रान्तिकारी विचारों ने शिक्षा जगत में भूकम्प सा पैदा कर दिया, खलबली मचा दी। इनका कथन है कि बालक अपने आस पास की दुनियां को जानने तथा ज्ञान प्राप्ति करने के लिये जन्म से ही उत्सुक रहता है। इस आयु में (जन्म से छः साल तक) ज्ञान ग्रहण करने की शक्ति भी बालक में अत्यन्त प्रबल होती है। स्वयं ज्ञान प्राप्ति के लिये

बालक बिना थके, बिना परेशान हुये, बिना दबाव के, बिना बाह्य नियन्त्रण के खुशी खुशी अगाध परिश्रम किया करता है। सोने के समय को छोड़ कर वह हर समय किसी न किसी प्रवृत्ति में लगा ही रहता है। स्वतन्त्र रूप से प्रवृत्ति करते रहना बालक का प्राण है। पढ़ाई के विषयों का चुनाव भी वह स्वयं ही करता है। बालक का स्वभाव प्रगतिशील है। वह सदा पूर्णता की ओर जाता है। बालक एक महान सन्देश लेकर जन्म लेता है। उसे पूर्ण मानव बनना है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बाल्य-काल मानव जीवन का सर्वोत्कृष्ट समय है। बाल-जीवन मानव जीवन की नींव है। जैसे बीज से वृक्ष का निर्माण होता है, उसी प्रकार बीज रूपी बालक में से मनुष्य रूपी वृक्ष का निर्माण होता है। जैसे सभी जीवित प्राणियों में सम्पूर्णता छिपी रहती है, उसी प्रकार बालक में भी जन्म से ही मनुष्यत्व मौजूद रहता है जो प्रत्येक मनुष्य का आदर्श है। सचमुच बालक महान् व्यक्ति है, मनुष्य में जो भी शक्तियां पाई जाती हैं उन सब का निर्माण बालक ही करता है। निर्माण करने की बालक में गजब की शक्ति है। गर्भ में ही बालक निर्माण कार्य में लग जाता है। फिर जन्म से छः साल तक निर्माण करते करते वह पूर्ण मनुष्य बन जाता है। शून्य से पूर्ण मनुष्य बनने की शक्ति प्रकृति ने बालक को ही दी है। मनुष्य बहुत कुछ कर सकता है। हवाई जहाज बना सकता है। मशीनगनें तैयार कर सकता है, अणु बम का आविष्कार कर सकता है और भी अनेक प्रकार के चमत्कार कर सकता है लेकिन मनुष्य का निर्माण करने में वह सर्वथा असमर्थ है। यह शक्ति केवल बालक में ही है। इसी में बालक की महानता है। इसीलिये बालक मानव-जगत का निर्माता है।

बाल-जीवन के प्रथम छः साल बड़े ही महत्वपूर्ण हैं। ये वे साल

हैं जिनमें बालक का जीवन बन सकता है या बिगड़ सकता है। जेजुएट धर्म का एक पादरी कहा करता था—"शुरू के छः सालों तक बालक को मुझे सौंप दो। इसके बाद जहां उसकी इच्छा हो उसे जाने दो।" विज्ञान की नवीनतम खोजों ने सिद्ध किया है कि इन छः सालों में भी प्रथम वर्ष सब से अधिक महत्व का है। बर्टरेंड रसल का कथन है कि—"प्रथम वर्ष में बालक जितना विकास करता है, उतना विकास वह अपने सारे जीवन में नहीं कर सकता।" प्रणाली-विज्ञान-वेत्ता कर्ल के अनुसार बालक दो या तीन वर्ष की आयु में जितना ग्रहण करता है, उतना मनुष्य ६० वर्ष की आयु में भी ग्रहण नहीं कर सकता। एक जापानी शिक्षा शास्त्री ने भी इन्हीं विचारों का समर्थन किया है। वह लिखता है कि—"तीन वर्ष की आयु में बालक में जो स्पिरिट भर दी जाती है, वह सौ साल तक कायम रहती है।" डाक्टर मोन्टीसोरी ने भी प्रथम तीन वर्षों को बहुत महत्वपूर्ण बताया है। वे लिखती हैं कि—"प्रथम वर्ष में बालक इतनी तेजी से प्रगति और विकास करता है कि तीन साल की समाप्ति पर विकास की दृष्टि से वह वृद्ध हो जाता है। इतना महत्वपूर्ण है बाल-जीवन का प्रथम वर्ष।"

एक साल की इस आयु में बालक अपने आस-पास की सभी चीजों को जानने पहिचानने लगता है। व्यवस्था का भी इस समय बालक को बड़ा ध्यान रहता है। सब चीजों को वह यथा स्थान देखना चाहता है। जरा सी भी अव्यवस्था से वह हैरान परेशान हो जाता है। दो साल की आयु में बालक का ध्यान इतनी सूक्ष्म चीजों की ओर जाता है कि जिसकी हम कल्पना भी नही कर सकते। इस समय बालक की दृष्टि बड़ी पैनी होती है।

इस समय काम करने के लिये बालक बड़ा उत्सुक रहता है। अपने अज्ञान के कारण हम उसे काम करने का अवसर न देकर उसके

बालक संगीत सीख रहे हैं।

विकास में बाधा डालते हैं। इस समम काम करने की बालक को पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिये। काम करते–करते तीन साल तक बालक अपना शारीरिक और मानसिक विकास पूरा कर लेता है। शेष तीन सालों में प्राप्त शक्तियों को बढ़ाता है। यह सब कुछ बालक स्वयं ही अपने परिश्रम से करता है। इसके लिये बालक को केवल उपयुक्त वातावरण चाहिये और आवश्कता पड़ने पर आवश्यक सहायता और कुछ नहीं। विकास का काम बच्चे को ही करने देना चाहिये। अगर वह ऐसा नहीं करता तो उस काम को बिना किये ही छोड़ देना चाहिये। बालक को खुद ही अपनी शक्तियों और इन्द्रियों का उपयोग करना चाहिये। जो शक्तियां बच्चों का विकास करती हैं, वे उसके अन्दर से ही पैदा होती हैं। इन शक्तियों का पुष्ट करना, काम में लाना और विकसित करना सिवाय बालक के और किसी का कर्तव्य नहीं है। यह बात सदा याद रखने की है कि जो कुछ बालक सीखता है वह स्वयं सीखता है और कोई उसे सिखा नहीं सकता। भाषा इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

बालक को भाषा कौन सिखाता है? बालक को भाषा कोई नहीं सिखाता। वह स्वयं अपनी प्रकृतिदत्त शक्ति से, वातावरण से भाषा ग्रहण करता है। यह बात बिलकुल गलत है कि बालक मां से भाषा सीखता है। यदि यह बात सही होती तो नवजात शिशु की माता के मर जाने पर बालक सदा गूंगा ही रहता। लेकिन ऐसा होता नहीं। पहले बालक कुछ खुले शब्द बोलने लगता है। यह सब कुछ स्वाभाविक रूप से होता है। बालक अनेक प्रकार की ध्वनियों को सुनता है। लेकिन आश्चर्य यह है कि इन सब आवाजों में से बालक केवल मनुष्य की आवाज को ही ग्रहण करता है। ढाई वर्ष की आयु में बालक खूब बोलता है। पांच वर्ष की आयु तक व्याकरण सहित भाषा को बालक

सीख जाता है। इसके लिये बालक को किसी भाषा शास्त्री या व्याकरणाचार्य की जरूरत नहीं पड़ती। अन्दाजा लगाया गया है कि सुसंस्कृत वातावरण में पला हुआ बालक पांच वर्ष की आयु में तीन हजार शब्द और छः साल की आयु में पांच हजार शब्द सीख जाता है। नये-नये शब्द सीखने के लिये बालक बड़ा ही उत्सुक रहता है। इस समय में बालक खेल-खेल में कठिन से कठिन भाषा को सीख जाता है। बालक ही भाषा को जीवित रखता है। यदि बालक में यह शक्ति न होती तो एक पीढ़ी में ही भाषा का अन्त हो जाता। भाषा सीखने का काम एक निर्धारित समय में ही होता है जिसे सम्वेदनकाल कहते हैं। साढ़े-पांच और छः वर्ष की आयु में भाषा की सम्वेदनशीलता कम हो जाती है। इस समय भाषा ग्रहण करने का उत्साह बालक में उतना नहीं रहता जितना कि सम्वेदनकाल में होता है।

भाषा की तरह बालक लिखना भी सरलता से सीख जाता है। हां, लेखन के लिये पूर्व तैयारी की जरूरत है। लिखना सीखने के लिये तीन से छः साल का समय उपयुक्त है। आठ और नौ वर्ष के बालक में लिखने की शक्ति या उत्साह बिलकुल नहीं रहता।

सम्वेदनकाल विकास के लिये बड़ा ही महत्वपूर्ण है। इस समय बालक की जिज्ञासा बड़ी तीव्र होती है। वह नित नई बात जानना और सीखना चाहता है। सीखने की उसकी भूख बढ़ती ही रहती है। इस समय ज्ञान के भण्डार अगर बालक के सामने खोल दिये जांय, तो बड़ी सरलता से वह जटिल विषयों का ज्ञान स्वानुभव से प्राप्त कर सकता है। अतः इस समय वनस्पतिशास्त्र, प्राणी शास्त्र, भूगर्भ शास्त्र, खगोल विद्या, इतिहास-भूगोल, रसायन-शास्त्र, अङ्कगणित-बीज गणित आदि विषय साधनों और चित्रों द्वारा बालकों के सामने रखने चाहियें। बालक इन विषयों में बड़ा रस लेते हैं। यह कोरे सिद्धान्त की बात

नहीं है। यह तो एक ठोस सचाई है। यह ध्यान रहे कि यह सब कुछ सम्वेदनकाल में ही सम्भव है जो निश्चित समय पर ही आता है। सम्वेदनकाल में ही बालक में ग्रहण करने की शक्ति प्रबल होती है। प्रकृति ने भिन्न भिन्न वस्तुओं के लिये भिन्न-भिन्न सम्वेदनकाल निश्चित किये हैं। बालक की शिक्षा के लिये प्रथम छः वर्ष बड़े ही महत्वपूर्ण हैं। अतः बालक की शिक्षा शुरू से ही होनी चाहिये, छः साल के बाद नहीं जैसा कि आजकल होता है।

जिस प्रकार बालक भाषा आदि सीखता है, उसी प्रकार वह अपनी जाति और राष्ट्र की विशेषताओं को अपनाता है। जब बालक जन्म लेता है, तो उस समय वह हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, पारसी, जैन, रोमन कैथेलिक, प्रोटेस्टेण्ट आदि कुछ नहीं होता। और न वह हिन्दुस्तानी, जापानी, चीनी, रूसी, अमरीकी, या अँग्रेज होता है। वह केवल बालक होता है। लेकिन धीरे-धीरे वह जिस धर्म या जाति में पैदा होता है, उसी धर्म और जाति को अपनालेता है। इसी प्रकार वह कांग्रेसी, नाजी, फासिस्ट, समाजवादी, कम्युनिष्ट आदि बन जाता है। बालक को यह सब कुछ कौन सिखाता है? बालक खुद ही वातावरण से इन सब बातों को ग्रहण कर लेता है। प्रकृति ने बालक को एक ऐसी विलक्षण शक्ति दी है कि जिससे वातावरण की विशेषताओं को वह अपने जीवन का अंग बना लेता है। बालक समय और स्थल विशेष के अनुकूल अपना व्यवहार और निर्माण करता है। भारत में पैदा हुआ बालक गाय का जितना आदर सत्कार करेगा उतना इंगलैंड में पैदा हुआ बच्चा कदापि न करेगा। वातावरण के अनुकूल बन जाने की शक्ति बालक में ही होती है, बड़ों में नहीं। बालक को किसी भी वातावरण में रख दीजिये, वह अपने को उसके अनुकूल बना गा। लेकिन प्रौढ़ ऐसा नहीं कर सकते। जो व्यक्ति शान्त वातावरण

में रहता है, उसे अगर कोलाहलपूर्ण वातावरण में रख दिया जाय तो वहां उसकी नाक में दम आ जायगा और वहां से छुटकारा पाने पर ही उसको चैन मिल सकेगी। परन्तु बालक में यह बात नहीं है। आज सुधार पर सुधार होते हैं, परिस्थितियां बदलती हैं, भाषा में परिवर्तन होता है। बालक ही इन सब परिवर्तनों को अपना सकता है, बड़ों में यह शक्ति नहीं है।

बालक ही समाज में फैले हुये अर्थहीन रस्म रिवाजों, विनाशक परम्पराओं, प्राणघातक अन्धविश्वासों, मानवता को कलङ्कित करने वाली छुआछूत, रंग-भेद, जाति-भेद तथा अन्य अनेक प्रकार के गले सड़े विचारों का अन्त कर एक नये ही वर्ग रहित, जाति रहित, सम्प्रदाय रहित तथा पन्थ रहित समाज का निर्माण कर सकता है। बालक ही ऐसी क्रान्ति कर सकता है। बड़ों से ऐसी आशा रखना आकाश कुसुम के समान है।

बिखरी हुई मानव जाति को एकता की लड़ी में पिरोने की शक्ति भी केवल बालक में ही है। भिन्न-भिन्न कुटुम्बों, भिन्न-भिन्न जातियों तथा भिन्न-भिन्न धर्मों के बालक प्रेम से हिलमिल कर साथ-साथ खेलते हैं, साथ-साथ खाते हैं और साथ-साथ काम करते हैं। छोटे बड़े अमीर, गरीब, छूत–अछूत, राव–रङ्क, हिन्दू–मुसलमान आदि का अप्राकृतिक भेद भाव उनमें नहीं होता। यह भेद भाव और कृत्रिमता तो बालक में वातावरण से आती है।

युद्धों का अन्त और विश्व-बन्धुता की स्थापना भी बालक ही कर सकता है। राष्ट्रसंघों, शान्ति परिषदों और सुरक्षा समितियों से युद्धों का अन्त न तो आज तक हुआ है और न भविष्य में हो सकेगा। यह तो मनोवृत्ति बदलने का सवाल है, जो बचपन में ही बदली जा सकती है।

बाल्यकाल ही ऐसा समय है, जिसमें सब कुछ सम्भव है। यही कारण है कि जर्मनी में नाजीवाद, इटली में फासिस्टवाद, जापान में सैनिकवाद और रूस में समाजवाद की जड़ जमाने के लिये बालक की शरण ली गई। शालाओं में डट कर इन वादों का प्रचार किया गया, जिसके फलस्वरूप जर्मनी का बच्चा-बच्चा नाजी, इटली का बच्चा-बच्चा समाजवादी बन गया।

बचपन में जो संस्कार पड़ जाते हैं, वे अमिट होते हैं। किसी के मिटाये वे मिट नहीं सकते। महात्मा गांधी और पण्डित जवाहरलाल भारतियों में अनुशासन हीनता की बड़ी शिकायत किया करते हैं। शोरगुल और कोलाहल से वे परेशान हो जाते हैं। इस अव्यवस्था के कारण श्रोताओं को उपदेश भी दिया जाता है और फटकारा भी जाता है। परन्तु नतीजा कुछ नहीं निकलता। निकल भी नहीं सकता। अन्य गुणों की तरह अनुशासन की नींव भी बचपन में ही रखी जा सकती है। स्वतन्त्र वातावरण में पला हुआ बालक बड़ा होकर कभी अनुशासन भंग नहीं करेगा। स्वतन्त्र देशों का उदाहरण इसका जीता जागता प्रमाण है।

स्वास्थ्य की दृष्टि से भी जन्म से छः साल का समय मानव-जीवन का बहुमूल्य समय है। मनुष्यों में पाये जाने वाले अनेक शारीरिक व मानसिक रोगों का कारण आज बचपन में ही खोजा जाने लगा है। गर्भाधान और गर्भ काल के आघातों के कारण बालक अनेक रोगों का शिकार हो जाता है, जिनका दूर करना सम्भव नहीं है। जन्म के बाद भी जो आघात होता है उसका असर भी कुछ कम नहीं होता। वैज्ञानिकों का कथन है कि गर्भाधान, गर्भकाल, जन्म और जन्म के बाद तक बालक को यदि ठीक वातावरण मिलता रहे तो तीन साल के अन्त तक बालक को आदर्श बन जाना चाहिये। परन्तु ऐसा होता नहीं।

जन्म से छः साल तक जिस ढंग से बालक का लालन–पालन होना चाहिये, वह नहीं होता, फलतः बड़ा होकर बालक अनेक रोगों का शिकार बन जाता है। अकेले अमेरिका में प्रतिवर्ष एक लाख आद–मियों को पागलों के अस्पताल में भेजा जाता है। अगर शुरू से छः सालों में पूरा-पूरा ध्यान रक्खा जाय तो कितने ही आदमियों को मूर्ख और पागल बनने तथा समय से पहले मर जाने से बचाया जा सकता है।

यह बात किसी से छिपी नहीं है कि आज के मानव-जीवन में क्रूरता, स्वार्थ–परता, लालच, ईर्ष्या, द्वेष, छल–कपट, चोरी, विला–सिता, हिंसा आदि का बोल–बाला है। गहराई से सोचने पर पता चलेगा कि मानव–समाज में फैली हुई इन सब बुराइयों का बीज बाल्य-वस्था में ही होता है। मनोविज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य के जीवन में जिन बुराइयों को हम देखते हैं, उनका मूल कारण बाल्य–वस्था की दुःख-मय स्मृतियां और घटनायें हैं। यह ठीक है कि बालक के रोजाना के जीवन में इन स्मृतियों और घटनाओं का असर दिखाई नहीं देता। निर्बल होने के कारण यह सब प्रकार के अपमानों को चुपचाप सहन कर लेता है। किसी से कुछ नहीं कहता। लेकिन बड़ा होने पर बालक जब शक्ति संचय कर लेता है तब इन स्मृतियों और घटनाओं का असर ऊपर बताई गई बुराइयों के रूप में बालक के जीवन में स्पष्ट नजर आता है। अनेक बार ऐसा होता है कि बालक के मन में झूठ बोलने, चोरी करने और छल–कपट से काम लेने का जरा भी इरादा न होने पर, हम उस पर झूठ बोलने, चोरी करने और छल–कपट से काम लेने का आरोप लगा देते हैं। ऐसे मिथ्या आरोप का नतीजा यह होता है कि बड़ा होने पर अच्छे से अच्छा बालक भी झूठ बोलने लगता है, चोरी करने लगता है, छल–कपट से काम लेने

लगता है। अन्य बुराइयों के सम्बन्ध में भी ऐसा ही होता है। अतः बालक पर झूठे आरोप लगाना, अनुचित रूप से उसे दबाना एक ऐसा अपराध है जो कभी माफ नहीं किया जा सकता।

जन्म से छः साल का समय केवल शारीरिक और मानसिक विकास के लिये नहीं बल्कि चरित्र निर्माण के लिये भी महत्वपूर्ण है। इस समय बालक स्वयं ही चरित्र-निर्माण की बातों को ग्रहण करता है। चरित्र विकास प्राकृतिक प्रेरणा या अन्तः शक्ति से होता है। यह ऊपर से लादा नहीं जा सकता। चरित्र-निर्माण के लिये बालक को स्वतन्त्र रूप से अपनी मन पसन्द प्रवृत्तियों के अनुसार चलने के लिये योग्य वातावरण मिलना चाहिये। प्रवृत्ति करते करते बालक में योगियों जैसी एकाग्रता आ जाती है। अपने काम में वह इतना तल्लीन हो जाता है कि अपने आस पास की दुनियां को बिलकुल भूल जाता है, उसे अपनी जरा भी सुध बुध नहीं रहती। उस समय का दृश्य देखते ही बनता है। एकाग्रता द्वारा बालक इच्छा शक्ति की रचना करता है, जिसमें चरित्र का निर्माण होता है। यह बात कभी नहीं भूलनी चाहिये कि उपदेश द्वारा चरित्र निर्माण का प्रयत्न करना बालू में से तेल निकालने के समान है।

उपदेश हृदय को स्पर्श नहीं करता, बुद्धि तक सीमित रहता है। उपदेश अच्छा बनने की प्रेरणा तो दे सकता है, परन्तु अच्छा बनाने की उसमें शक्ति नहीं है। सदियों से हम उपदेश और प्रवचन सुनते आ रहे हैं। उपदेशों से भरपूर पुस्तकों के पढ़ने में भी हम कोई कसर उठा नहीं रखते। परन्तु जब अपने जीवन की ओर दृष्टिपात करते हैं, तो अपने को हम कोरा ही पाते हैं। हमारे कहने और करने में जरा भी मेल नहीं है। हम कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं। ऊपर से तो हम प्रेम का राग अलापते है, परन्तु अन्दर से ईर्ष्या द्वेष की भट्टी

में जलते रहते हैं। बात तो हम विश्वबन्धुता की करते हैं, परन्तु अपने पड़ोसी का गला घोंटने के लिये हम हरदम तैयार रहते हैं। हमारा आज का जीवन शत प्रतिशत दुरंगा हो गया है। जिन्हें हम अपना धर्मगुरु मानते हैं, जीवन में उनके सिद्धान्तों के बिलकुल विपरीत ही चलते हैं। हजरत मुहम्मद और प्रभु ईसा के अनुयायी भ्रातृत्व और प्रेम का सन्देश फैलाने के बदले खून की नदियां बहाने और निर्बलों को कुचलने में जरा भी नहीं हिचकिचाते। भगवान महावीर और बुद्ध के भक्त सत्य और अहिंसा का प्रचार करने के बजाय येनकेन-प्रकारेण धन बटोरने में लगे हुए हैं। यही हाल कर्मयोगी कृष्ण और मर्यादा पुरुषोत्तम राम के उपासकों का है। और सुन लीजिये महात्मा गांधी वर्षों से सत्य और अहिंसा तथा हिन्दू मुस्लिम एकता का उपदेश दे रहे हैं। छुआछूत को मिटाने के लिये एड़ी चोटी का जोर लगा रहे हैं। लेकिन यह एक खुला रहस्य है कि सत्य और अहिंसा तथा हिन्दू मुस्लिम एकता से हम कोसों दूर हैं। छुआछूत से भी हम चिपटे हुए हैं। कारण स्पष्ट है। बचपन से जो सस्कार रग-रग में धुस गये हैं, उनका निकालना सम्भव नहीं है। सत्य, अहिंसा का प्रचार करने के लिये, नीतिमय जीवन बनाने के लिये, हिन्दू मुस्लिम एकता स्थापित करने के लिये, छुआछूत को मिटाने के लिये, बाल्यकाल ही सर्वश्रेष्ठ है। जैसा ऊपर बताया जा चुका है, बालक ही सुधारों को, नये विचारों को सरलता से अपना सकता है। अतः उपदेशों पर शक्ति खर्च न करके बालक की ओर ध्यान देना चाहिये। जीवन निर्माण के लिये सुन्दर वातावरण बनाना चाहिये। जीवन निर्माण के लिये वातावरण बालक का प्राण है। वातावरण बालक का निर्माण भी कर सकता है और विनाश भी। किसी ने क्या ही अच्छा कहा है—'जन्म का राम वातावरण के प्रभाव से रावण बन जाता है।'

स्वतन्त्रता की दृष्टि से भी बालक का महत्व कुछ कम नहीं है। सदियों से मानव जाति ने स्वतन्त्रता के नाम पर पानी की तरह अपना खून बहाया है, भारी से भारी बलिदान किया है। लेकिन हम देखते हैं कि आज भी मानव जाति गुलामी की जंजीरों में जकड़ी हुई है, पराधीनता की चक्की में पिस रही है। राजनीतिक दृष्टि से हम कह सकते हैं कि अमेरिका, इंगलैंड, रूस आदि देश स्वतन्त्र हैं, वे किसी अन्य जाति के गुलाम नहीं हैं। लेकिन वास्तव में वे भी स्वतन्त्र नहीं हैं। आज से कुछ दिन पहले इस प्रकार की स्वतन्त्रता जर्मनी, जापान और इटली को भी प्राप्त थी। लेकिन संसार व्यापी युद्ध ने उनकी स्वतन्त्रता को मिट्टी में मिला दिया है। आज वे परतन्त्र और पराधीन हैं और कौन जानता है कि आज जो स्वतन्त्र हैं, कल उन्हें भी अपनी स्वतन्त्रता से हाथ धोने पड़ें। सच्ची और स्थायी स्वतन्त्रता मानव-जाति के परम हितैषी और परम मित्र बालक को स्वतन्त्र करने से ही आयेगी। यह खूब अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि जब तक बालक गुलाम है, तब तक मानव समाज गुलाम ही रहेगा। बालक के गुलाम रहते हुए स्वतन्त्रता का ख्वाब देखना हास्यप्रद है। वृक्ष को हरा-भरा और सरसब्ज रखने के लिये जड़ को न सींच कर पत्तों और टहनियों को पानी देते रहना मूर्खता नहीं तो और क्या है? अतः स्वतन्त्रता का सवाल बालक की स्वतन्त्रता का सवाल है। विश्व-शान्ति, विश्व-बन्धुत्व और विश्वकल्याण के लिये बालक को स्वतन्त्र करना अनिवार्य है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जीवन की नैतिक, धार्मिक, शारीरिक, बौद्धिक, आर्थिक सामाजिक तथा राजनीतिक आदि सभी जटिल समस्याओं को सुलझाने के लिये बालक ही सर्वोत्तम साधन है। इसके सिवाय दूसरा कोई उपाय है ही नहीं, हो ही नहीं सकता। इसीलिये मैं कहता हूँ कि बालक क्रान्ति का मूल स्रोत है।

बालक प्रकृति की अनमोल देन है, सुन्दरतम् कृति है, सब से निर्दोष वस्तु है। बालक मनोविज्ञान का मूल है, शिक्षक की प्रयोग-शाला है। बालक कुल का दीपक है, माता पिता का सर्वस्व है। बालक का जीवन सजीव जीवन शाला है। बालक प्रेम का अवतार है। बालक मानव जगत का निर्माता है, क्रान्ति का मूल स्रोत है। बालक के विकास पर दुनियां का विकास निर्भर है। बालक की सेवा ही विश्व की सेवा है।

बालक को प्रसन्न रखना चाहिये ।

बच्चों की स्वतन्त्रता में बाधा न डालो ।

माता पिता की जिम्मेदारी

आज माता-पिता की जिम्मेदारी का महत्व बढ़ गया है, इसने नया ही रूप धारण कर लिया है। इसका कारण आधुनिक मनोविज्ञान है, जिसने यह सिद्ध कर दिया है कि मानव-जाति का भविष्य नवयुवकों के हाथों में नहीं, बल्कि बालकों के हाथों में है। यदि इस दुनियां को स्वर्ग बनाना है तो हमें अपने बालकों का यथोचित विकास करना चाहिये। बाल-जीवन ही नई सभ्यता की नींव है। यही उसकी सामग्री है। यही उसके विकास का नियम है। यही उसकी सफलता की कुञ्जी है। अतः बाल-जीवन का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने तथा उसके प्रति उचितवृत्ति रखने में हमारा कल्याण और उदासीन रहने में हमारी मृत्यु है। इसी लिये माता-पिता की स्थिति मनुष्य जाति को नया जीवन, सभ्यता को नया रूप, समाज को नया सुख और शान्ति देने की है। परन्तु माता पिता क्या अपने गम्भीर उत्तरदायित्व को पूरा कर रहे हैं?

पागलों ने पहले पहल माता-पिता को दोषी ठहराया, और फ्रायड ने पहले पहल इस अभियोग की सचाई की पुष्टि की। उसने अकाट्य तर्क और प्रामाणिक घटनाओं से सिद्ध कर दिया कि पागलों के मन की खलबली और ऊधम उनके बाल-जीवन की दबाई हुई इच्छाओं और प्रवृत्तियों की गूञ्ज है, और इन बलपूर्वक दबाई हुई इच्छाओं से

उत्पन्न होने वाले दु:खों का कारण माता-पिता का अन्यायपूर्ण और कठोर व्यवहार है। मनुष्य जाति में आज जा मानसिक अस्वास्थ्य, पारवारिक क्लेश, सामाजिक कलह और अन्तर्जातीय युद्ध हम देख रहे हैं, इन सब का कारण त्रुटिपूर्ण और दोषपूर्ण पालन-पोषण हैं। यदि बाल-जीवन आनन्दमय हो, तो हमारी हल न होने वाली समस्याएँ हल हो जायें, और नये जीवन, नये सुख का अनुभव हो।

माता-पिता के बालक के पालन-पोषण में क्या-क्या कमियां हैं, जिनके कारण हमारा सामाजिक जीवन इतना भयङ्कर बना हुआ है ? आइए, उनका अध्ययन करें।

(क) माता-पिता का पहला दोष यह है कि वे यह समझते हैं कि बालक के पालन-पोषण के लिये उनका अन्तर्ज्ञान तथा उनके परम्परागत रिवाज ही काफी हैं, और उन्हें किसी विशेष बाल-जीवन-विज्ञान और ट्रेनिंग की आवश्यकता नहीं। इस मिथ्या विश्वास के कारण माता-पिता अपने आपको पालन-पोषण में पूर्ण समझते हैं, इसलिये बालक पर जो अत्याचार होते हैं, उन्हें वे नहीं जानते, नहीं महसूस करते। नीचे दिये गये उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जायेगा कि माता-पिता का यह खयाल कि उनका बाल-पालन-पोषण का अनुभव ठीक और काफी है, बिलकुल गलत है।

(१) यदि माता-पिता का अन्तर्ज्ञान और सामाजिक रीति रिवाज पालन-पोषण के लिये ठीक होते तो आज मनुष्य समाज की यह दुर्दशा क्यों होती ? जब हम शारीरिक रोग के शिकार हो जाते हैं तो उसका कारण अपने वातावरण और व्यवहार में ढूंढते हैं। उदाहरण के तौर पर यदि किसी को मलेरिया हो जाय, तो उसका कारण हम आस-पास के वातावरण अर्थात् गन्दे पानी के छोटे-छोटे गड्ढों अथवा गन्दी नालियों में पैदा हुए मच्छरों के काटने में पाते हैं। इसी प्रकार अन्य

शारीरिक रोगों, जैसे हैजा, टाईफायड इत्यादि का कारण हम अपने खाने पीने की त्रुटियों में ढूंढते हैं। ऐसा क्यों ? यह इसलिये कि हमारा शारीरिक स्वास्थ्य-सम्बन्धी अन्तर्ज्ञान काफी नहीं है। इस कमी को पूरा करने के लिये अपनी बुद्धि द्वारा वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त करना अति अनिवार्य है।

बालक के मानसिक अस्वास्थ्य अर्थात् चोरी, झूंठ, आलस, ठग्गी आदि असामाजिक व्यवहारों का कारण शारीरिक रोगों की तरह उसके वातावरण में है। बालक के लिये मानसिक वातावरण उसके माता-पिता हैं। इसलिये बालक के मानसिक अस्वास्थ्य के कारण उसके माता-पाता हैं। बालक का अस्वस्थ्य और असामाजिक वातावरण सर्व साधारण हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि माता-पिता का अन्तर्ज्ञान बाल-पालन-पोषण के लिये काफी नहीं है। जैसे शारीरिक स्वास्थ्य के लिये स्वास्थ्य ज्ञान का होना आवश्यक है, वैसे ही बालक के मानसिक स्वास्थ्य के लिये बाल-मनो-विज्ञान का ज्ञान आवश्यक और अनिवार्य है।

(२) केवल यही नहीं कि अन्तर्ज्ञान हमारे स्वास्थ्य की रक्षा नहीं कर सकता, बल्कि रोगी होने पर रोग के निवारण का साधन भी नहीं बन सकता। हम जानते हैं कि पश्चिमीय देशो में जहां शारीरिक और औषध-विज्ञान ने उन्नति की है, वहां के लोगों की रोगों से कितनी रक्षा हुई है। कई रोगों से तो वहां अब प्रतिशत नाममात्र ही मौतें होती हैं। उदाहरणार्थ शारीरिक विज्ञान से पहले बहुत सी माताएँ बच्चे के पैदा होने पर मर जाती थीं, परन्तु अब इनकी संख्या बहुत कम रह गई है। इसके विपरीत हमारे देश का क्या हाल है ? यहां अब भी हमने अन्तर्ज्ञान और परम्परागत अनुभवों को ही अपना पथ-प्रदर्शक बना रक्खा है, यहां अब भी दाइयां और पास-पड़ौस की बड़ी-बूढ़ी औरतों का ही बोल बाला है। जो अन्तर्ज्ञान और परम्परागत

रूढ़ियों की अवतार समझी जाती हैं। इनके द्वारा कितनी अधिक मात्रा में माताएँ बच्चे पैदा होने के समय मर जाती हैं, यह बात किसी से छिपी नहीं है। जब शारीरिक रोगों से मुक्ति पाने के लिये बुद्धि द्वारा प्राप्त ज्ञान की इतनी आवश्यकता है, तो क्या मानसिक अस्वास्थ्य से मुक्ति पाने के लिये मनो विज्ञान की आवश्यकता नहीं।

(३) अन्तर्ज्ञान का तीसरा दोष यह है कि यह उन्नति का मार्ग कभी नहीं दिखा सकता। हम जानते हैं कि पश्चिमीय देशों ने खेती-बाड़ी में भारी उन्नति की है। उन्होंने कितने अच्छे गेहूँ, चावल और सब्जियां इत्यादि पैदा कर लिये हैं। उसी जमीन में से एक फसल के बजाय दो-दो, तीन-तीन फसलें पैदा करते हैं। इसी प्रकार उन्होंने साधारण फूलों को लेकर बहुरंगी और बड़े बड़े फूल उत्पन्न कर लिये हैं। पशु जाति का भी उन्होंने विकास किया है। चार सेर दूध देने वाली गाय को ५० सेर दूध देने वाली गाय बना दिया है। और हमारा देश जो खेती-बाड़ी का घर गिना जाता है, जहां पशुओं का कोई हिसाब ही नहीं है, वहां कोई उन्नति नहीं हुई। इसका कारण यही है कि हम लोग केवल अपने अन्तर्ज्ञान और परम्परागत अनुभवों पर ही निर्भर हैं। यदि खेती-बाड़ी को अच्छा बनाने और पशु जाति की नसल सुधारने के लिये वैज्ञानिक ज्ञान अनिवार्य है, तो क्या मनुष्य जाति के आदर्श विकास के लिये मनुष्य स्वभाव का वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक नहीं? यदि हम चाहते हैं कि मनुष्य जाति श्रेष्ठ बने तो इसके लिये हमें बाल-मनोविज्ञान को समझना होगा और इससे फायदा उठाना होगा।

बालकों के मानसिक स्वास्थ्य के लिये उनके मानसिक रोगों के निराकरण के लिये, बाल-मन के सर्वोत्तम विकास के लिये बाल-मनो-विज्ञान का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। आश्चर्य तो यह है कि जहाँ और

सामाजिक क्षेत्रों में हम वैज्ञानिक-ज्ञान और ट्रेनिंग को आवश्यक समझते हैं, वहां बाल-पालन-पोषण के लिये कोई ऐसी मांग हम क्यों नहीं करते? गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने वाले व्यक्तियों से यह मांग नहीं की जाती कि उन्होंने बाल-मनोविज्ञान का अध्ययन और बाल-पालन-पोषण की ट्रेनिंग पाई है या नहीं? परन्तु यदि कोई किसी कारखाने में नौकरी करना चाहे तो उससे पहले यह पूछा जाता है कि उसने कारखाने के काम में ट्रेनिंग पाई हुई है या नहीं? कारखाने का मालिक जानता है कि यदि कारखाने की मशीन किसी अनाड़ी के हाथ में दे दी, तो मशीन का सत्यानाश हो जायेगा। हम मशीन के चलाने के लिये और उसकी रक्षा के लिये तो इतने चौकस रहते हैं, परन्तु बाल-विकास और बाल-रक्षा के लिये हम माता-पिता बनने वालों से बाल-मनोविज्ञान के ज्ञान और ट्रेनिंग की कोई मांग नहीं करते। यह भाग्य की विडम्बना नहीं तो और क्या है, कि मनुष्य अपने बालकों की अपेक्षा अपनी मशीनों के लिये अधिक सुरक्षित परिस्थितियों का निर्माण करता है। मशीन को चलाने के लिये तो ट्रेंड व्यक्तियों की आवश्यकता अनुभव की जाती है, लेकिन बालक को अनाड़ी और अनुभव-हीन माता-पिता के हाथों में सौंप दिया जाता है। कितना अंधेर! कितना अन्याय! और इस पर भी सितम यह है कि माता-पिता अपने सर्वथा योग्य और पूर्ण त्यागी होने का ढोंग रचते हैं। जिस व्यक्ति को कारखाने की मशीन चलाने की ट्रेनिंग नहीं, वह तोड़ ताड़ कर मशीन का सत्यानाश करने के सिवा और कर भी क्या सकते हैं? और यदि मशीन बच भी जाये तो यह उसकी कृपा नहीं। यही हाल बालक के पालन-पोषण का है। अज्ञानी और अनुभव-हीन माता-पिता बालक के मानसिक गठन को अस्वस्थ करने के अतिरिक्त और क्या सेवा कर सकते हैं? और यदि बालक मानसिक रूप से कुछ स्वस्थ रहे भी, तो

इसमें समाज और माता पिता की कृपा नहीं। यदि माता-पिता को अपना उत्तरदायित्व उचितरूप से निभाना है तो उन्हें बालक के विषय में सच्चा ज्ञान प्राप्त करना और ट्रेनिंग लेनी चाहिये।

जहां असंख्य माता-पिता बाल-शारीरिक-विज्ञान और मनोविज्ञान से विमुख और उदासीन रहते हैं, वहां कुछ पढ़े लिखे माता-पिता बाल-ट्रेनिंग के नियमों का कठोरता से पालन करते हैं, मगर ऐसा करने में वे बालक की अवस्था और प्रकृति की ओर ध्यान नहीं देते। उनका व्यवहार नये और उत्साही डाक्टर का सा होता है जो पहले पहल अपने रोगियों की व्यक्तिगत प्रकृति का विचार न करके अपनी औषधियां देता है। समय आने पर उसे अनुभव होता है कि अच्छी से अच्छी औषधि भी प्रत्येक रोगी के लिये उपयोगी नहीं। उसे यह भी पता लगता है कि विशेष अवस्था को ध्यान में रखकर ही दवाई चुननी चाहिये, और औषध सम्बन्धी आज्ञाओं और सुझावों में परिवर्तन करना चाहिये। पढ़े लिखे माता-पिताओं को भी पुस्तकों में दिये हुये बाल-पालन-पोषण के नियमों और विधियों का अपने बालक की निजी प्रकृति और अवस्थाओं को सन्मुख रख कर सुधार करना चाहिये। उदाहरण के लिये माता-पिता बाल-ट्रेनिंग सम्बन्धी पुस्तकों में पढ़ते हैं कि बालक को समय पर दूध पिलाना चाहिये, उसे समय पर टट्टी करानी चाहिये। यदि बालक की अवस्था और निजी प्रकृति की परवाह न करके इन बातों पर कठोरता से अमल किया जावे तो बालक स्वस्थ होने के बजाय रोगी हो जावेगा। सब बालकों के लिये दूध पीने के समय का अन्तर और दूध की मात्रा, अभ्यास करने की योग्यता और समय एक बराबर नहीं। यदि बालक की शारीरिक और मानसिक अनुभव की तीव्रता, उसकी आवश्यकता के बारे में लापरवाही की जाय तो बाल-पालन की वैज्ञानिक विधियां स्वास्थ्य के साधन बनने के बजाय बाल-कष्ट और रोग

के कारण बन जायेंगी। जहां एक प्रकार के माता-पिताओं का यह दोष है कि वे बाल-पालन सम्बन्धी वैज्ञानिक नियमों और विधियों से कोई सहायता नहीं लेते, वहां दूसरे प्रकार के माता-पिता का यह दोष है कि वे अन्तर्ज्ञान और परम्परागत अनुभवों को बाल-पालन-पोषण में कोई स्थान नहीं देते। यह दोनों ही प्रकार के माता-पिता अपने उत्तर-दायित्व को सही तौर पर पूरा नहीं करते। अतः प्रत्येक माता-पिता को केवल बाल-पालन-पोषण का वैज्ञानिक ज्ञान और ट्रेनिंग ही नहीं चाहिये, बल्कि एक वैज्ञानिक की तरह अपने बालक की निजी प्रकृति और आवश्यकताओं को भी समझना चाहिये। अन्तर्ज्ञान और परम्पराओं का बाल-पालन-पोषण में स्थान है, परन्तु बाल-मनोविज्ञान और ट्रेनिंग की सहायता से इसमें सुधार करने की जरूरत है। इसी प्रकार बाल-मनोविज्ञान और ट्रेनिंग का बाल-पालन-पोषण में स्थान है, परन्तु अन्तर्ज्ञान और परम्परागत अनुभव के द्वारा इसमें सुधार होना चाहिये। अन्तर्ज्ञान और वैज्ञानिक ज्ञान परस्पर विरोधी नहीं, अपितु परस्पर सहायक हैं। इसलिये माता-पिता का अपने उत्तरदायित्व को ठीक तौर पर निभाने के लिये वैज्ञानिक बाल-ज्ञान और ट्रेनिग से अपने अन्तर्ज्ञान और परम्परागत अनुभव को ज्योतिर्मान करना चाहिये। बाल-ज्ञान तथा बाल-मनोविज्ञान सम्बन्धी पुस्तकों में दिये नियमों और विधियों का बिना विवेक के बेतहाशा प्रयोग नहीं करना चाहिये। परन्तु इन्हें बालक की अवस्था और वातावरण को सन्मुख रख कर ही काम में लाना चाहिये।

(ख) जैसे माता-पिता का पहला दोष वैज्ञानिक ज्ञान से उदासीन रह कर केवल अन्तर्ज्ञान और परम्परागत अनुभव पर निर्भर रहना है, वैसे ही उनका दूसरा दोष यह है कि वे बालक के लिये अपना आचार विचार ही उसके जीवन निर्माण के लिये यथेष्ट समझते हैं। बालक के

ठीक ठीक विकास के लिये माता-पिता का उत्तम आचार विचार आवश्यक है, जिसकी प्रत्येक मानस शास्त्री पुष्टि करता है। माता-पिता का आचार विचार रहित जीवन बालक के जीवन के लिये अत्यन्त प्रतिकूल व हानिकारक है। बालक माता-पिता का अनुकरण करना चाहता है। माता-पिता बालक के आदर्श हैं। इसलिये यदि उनका अपना आचार विचार दोषपूर्ण और असामाजिक हो, तो बालक में भी असामाजिक व्यवहार की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है।

परन्तु माता-पिता को बालक के चरित्र के प्रति अपना कर्तव्य पालन करने के लिये केवल अपने उच्च जीवन से ही सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए क्यों कि उच्च जीवन रखते हुये भी यदि वे बालक के मित्र न बन सकें, बालक के विश्वास-पात्र न बन सकें, उसके व्यक्तित्व का उचित सन्मान न कर सकें, तो बालक असामाजिक व्यवहार करने के लिये उत्सुक हो जायगा। क्या हम नहीं जानते कि उच्च से उच्च जीवन व्यतीत करने वालों के बालकों का जीवन अत्यन्त निकृष्ट हो जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि अपनी अज्ञानता और नासमझी के कारण माता-पिता बालक के साथ अपना उचित मनोवैज्ञानिक सम्बन्ध जोड़ने में असफल रहते हैं। ऐसे उच्च अनाचारवान माता-पिताओं की वही हालत है, जो कई अच्छे विद्वानों की होती है। कई विद्वान अध्यापक स्वयं बहुत विद्वान होते हुये भी अपने विद्यार्थियों को अपना ज्ञान नहीं दे सकते। उलटा अपने पढ़ाने की गलत विधियों द्वारा उनके मन में ज्ञान के लिये घृणा तक उत्पन्न कर देते हैं, जिससे उनका ज्ञान-जीवन में प्रवेश करना असम्भव हो जाता। अच्छे अध्यापक के लिये केवल अच्छा ज्ञानी होना ही काफी नहीं, परन्तु उसके लिये ऐसी विधियों का ज्ञान प्राप्त करना भी आवश्यक है, जिनके द्वारा वह अपने ज्ञान को रोचक और आकर्षक बनाने में सफल हो सके और विद्यार्थियों को

अपना मित्र तथा विश्वास-पात्र बना सके। इसी प्रकार माता-पिता का भी यही कर्तव्य है कि वे बालक के साथ ऐसा मनोवैज्ञानिक सम्बन्ध स्थापित करें कि जिससे उसके लिये उनका उच्च जीवन मनोमोहक और मनोरञ्जक हो जाय।

साधारण माता-पिता मूर्ख अध्यापक की तरह बालक को मुख्यत: दो प्रकार की विधियों द्वारा अच्छे आचार विचार वाला बनाने का प्रयत्न करते हैं।

(I) दण्ड, भय और झूंठ की विधि।

(II) उपदेश द्वारा बालक के मन को प्रभावित करना।

पहली विधि अर्थात् दण्ड, भय और झूंठ की विधि बालक के मानसिक विकास के लिये जितनी हानिकारक है, और व्यक्ति को गुणवान् बनाने में जितनी असमर्थ है, उसका अनुमान भी नहीं किया जा सकता। बालक से कोई नया कार्य करवाना हो, किसी बात से हटाना अथवा रोकना हो तो हम उसको दण्ड की धमकी देकर एक दम करा सकते हैं। हमें यह विधि आसान लगती है, क्यों कि इसमें बालक को समझने की कठिनाई नहीं पड़ती, और ना ही सुविधाओं का त्याग करना पड़ता है। हम बालक को सुलाना चाहते हैं। हमें अन्य काम है। बालक सोना नहीं चाहता। ऐसी अवस्था में भला बालक को समझाने का अवकाश कहां। इसलिये हम उससे भय द्वारा अपना उद्देश्य पूरा करा लेते हैं। परन्तु सवाल यह है कि इस विधि के प्रयोग से बालक के मन पर क्या प्रभाव पड़ता है? बालक का मन इससे सदा के लिये अस्वस्थ हो जाता है। एक मोटा दृष्टान्त लीजिये। किसी ताले को खोलने के दो तरीके हैं, एक तो यह कि ताले की बनावट को समझा जाय, और उस ताले की जो उपयोगी कुञ्जी है, उसको लगाया जाय। दूसरी विधि यह है कि ताले को तोड़ कर खोला जाय। यह दूसरी विधि

हालांकि तुरन्त परिणाम उत्पन्न करती है, और ताले को समझने तथा धीरज से काम लेने की मुसीबत से बचा देती है, परन्तु यह पूर्णतया गलत विधि है। यदि इस विधि का अधिक अवसरों पर प्रयोग किया जाय तो ताला हमेशा के लिये खराब हो जायगा। हम साधारणतः यह कहते हैं कि "मशीन के साथ लड़ना बेवकूफी है। अगर उससे काम लेना है, तो उसको समझो।" यदि लोहे की बनी मशीनों पर शारीरिक बल के प्रयोग से इतनी हानि होती है, तो कल्पना कीजिये कि बालक की मन रूपी मशीन पर, जो सब मशीनों से सूक्ष्म है, दण्ड और भय का कितना हानिकारक प्रभाव पड़ता होगा। बालक के साथ झूठ बोलकर उससे एक या दूसरा काम कराने का सब से बड़ा नुकसान यह है कि बालक का अपने माता-पिता और शिक्षक में कोई विश्वास नहीं रहता और इस विश्वास के उड़ जाने पर माता-पिता और शिक्षक बालक की आचार शिक्षा के लिये कुछ भी करने योग्य नहीं रहते। दूसरी विधि, अर्थात् उपदेश के द्वारा बालक के मन पर असर डालना। यद्यपि यह कुछ इतनी हानिकारक नहीं, तथापि यह भी कुछ विशेषरूप से प्रभावशाली नहीं है। बालक की मानसिक अवस्था ऐसी निम्न श्रेणियों की होती है कि उसे यह उपदेश जैसे "तुम्हें यह करना चाहिये," "तुम्हें वह करना चाहिये" रुचिकर नहीं होता। न वह ऐसे उपदेशों के महत्व का अनुभव कर सकता है। वह आचार उपदेश का एक ही अभिप्राय समझता है कि उसके माता-पिता और शिक्षक उससे ऐसे काम कराना चाहते हैं, जिनको वह करना नहीं चाहता।

बालक की मानसिक अवस्था को सामने न रख कर उपदेश विधि का एक दुःखदाई फल यह होता है कि बालक शुभ आचार को दुःख के साथ सम्बन्धित करता है। उसके लिये सुख और पाप सम्बन्धित हो जाते हैं, और दुःख और शुभ आचार एक ही चीज के दो रूप हो

जाते हैं। यह अनुभव और विश्वास बालक के सदाचारी होने में भारी रोक बन जाते हैं। सच तो यह है कि बालकों के लिये उपदेश विधि पूर्णतया अनुपयोगी है।

माता-पिता का उत्तरदायित्व तभी पूरा होता है, जब वे यह भली भांति अनुभव करें कि बालक के साथ व्यवहार में मनोवैज्ञानिक नियमों पर निर्भर व्यवहार उतना ही आवश्यक है, जितना उच्च-आचार-निष्ठ जीवन। बालक के साथ उचित मनोवैज्ञानिक नियमों के अनुकूल व्यवहार पर ही आचार निष्ठ जीवन की नींव रखी जा सकती है। जिन मनोवैज्ञानिक नियमों का प्रत्येक माता-पिता को अपने उत्तरदायित्व की पूर्त्ति के लिये पालन करना चाहिये, वे यह हैं,—बालक के विकास की गतियों की ओर वैज्ञानिक वृत्ति, बालक के व्यक्तित्व का सन्मान, स्वयं स्फूर्ति के लिये अवकाश, प्रेमपूर्ण वातावरण, बालक की स्वाभाविक मांगों और रुचियों की तृप्ति और बालक के जीवन की नियमबद्धता आदि*।

(ग) हमने अब तक माता-पिता के दो दोषों का वर्णन किया है, अर्थात् माता-पिता अपने उत्तरदायित्व के निभाने में केवल अन्तर्ज्ञान पर निर्भर करते हैं तथा बालक के आचार-निर्माण में मनोवैज्ञानिक नियमों का निरादर करते हैं। माता-पिता का तीसरा दोष यह है कि वे बालक की शारीरिक मांगों का तो बहुत खयाल रखते हैं लेकिन उसकी मानसिक मांगों का कोई खयाल नहीं रखते। बालक को वे केवल एक शारीरिक व्यक्ति समझते हैं तथा उसकी शारीरिक मांगों की, अर्थात् उसके खाने-पीने की वस्तुओं का, उसके पहनने ओढ़ने के वस्त्र आदि का प्रबन्ध करते हैं। परन्तु यह जानने का कभी कोई प्रयत्न नहीं करते कि बालक की मानसिक मांगें तथा आवश्यकताएँ क्या हैं ? और उनकी

---

* इन सब बातों पर अन्य लेखों में प्रकाश डाला गया है। —सम्पादक

पूर्ति के साधन क्या हैं। माता-पिता यह भूल जाते हैं कि बालक का मानसिक जीवन उनके शारीरिक जीवन के साथ ही प्रारम्भ होता है। जैसे बाहरी परिस्थितियों तथा माता-पिता की शारीरिक परिस्थितियों का बालक पर अनुकूल तथा प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, उसी प्रकार बाहरी तथा माता-पिता की मानसिक परिस्थितियों का भी बालक पर प्रभाव पड़ता है। जब बालक गर्भ में होता है तो माता के लिये खाने पीने का विशेष प्रबन्ध पढ़े लिखे घरों में किया जाता है, ताकि बालक के शरीर का भली प्रकार विकास हो। माता अपनी कई शारीरिक गतियां करनी छोड़ देती है, जिनके करने से गर्भस्थ बालक को किसी प्रकार की हानि पहुंचने की सम्भावना हो। परन्तु क्या माता पिता अपनी मानसिक प्रतिक्रियाओं के द्वारा बालक को मानसिक हानि से बचाने का प्रयत्न करते हैं। माता-पिता के आपस में विवाद करने, माता के कुढने तथा क्रोधित होने पर, बालक के मन पर बुरा प्रभाव पड़ता है, तो क्या माता पिता ऐसी गतियों से सुधार की सम्भावना भी समझते हैं! क्या इसकी पूर्ति के लिये कोई प्रयत्न करते हैं। मनोविश्लेषण पद्धति के अनुसार रोगियों की परीक्षा करने पर यह सिद्ध हो चुका है कि यदि बालक माता की इच्छा के विरुद्ध गर्भ में जीवन धारण करे तो बालक में मानसिक रूप से अस्वस्थ रहने की प्रवृत्ति हो जाती है। बहुत से बेचारे बालकों को इस प्रकार की प्रतिकूल अवस्था मिलती है। क्यों कि बहुत सी माताओं पर एक के बाद दूसरा बालक अनपेक्षित रूप से ठूँस दिया जाता है। एक बालक तथा दूसरे बालक के जन्म में दो तीन वर्ष का अन्तर होना चाहिये। यह आर्थिक तथा शारीरिक दृष्टि से ही आवश्यक नहीं, परन्तु मानसिक दृष्टि से भी अत्यन्त आवश्यक है। बालक का जन्म ऐसी परिस्थिति में नहीं होना चाहिये, जहां माता पिता दोनों, विशेषकर माता बालक को पैदा करना न चाहती हो जरा अन्य

दृष्टान्त लीजिये, जिससे पता चलेगा कि माता पिता किस प्रकार मानसिक मांगों का निरादर करते हैं। बालक के लिये दूध पीना तो शारीरिक आवश्यकता है, परन्तु स्वयं दूध पीने की क्रिया आवश्यक नहीं। इसलिये बालक यदि स्वयं दूध पीना चाहे तो उसे पीने नहीं दिया जाता। परन्तु उसे पकड़ कर जबरन दूध पिलाया जाता है। माता-पिता को यह अनुभव नहीं होता कि जैसे दूध बालक के शरीर का खाजा है, उसी प्रकार स्वयं दूध पीने की क्रिया भी उसके लिये उतनी ही जरूरी है। जैसे भूखा बालक दूध पीकर शारीरिक तृप्ति तथा शान्ति का अनुभव करता है, उसी प्रकार स्वयं दूध पीने से उसे मानसिक तृप्ति तथा शान्ति प्राप्त होती है। जहां माता पिता बालक को दूध देकर शारीरिक सुख तथा शान्ति देते हैं, वहां उसे मानसिक सुख तथा शान्ति से वञ्चित करते हैं। कौन नहीं जानता कि मानसिक अस्वास्थ्य शारीरिक अस्वास्थ्य से कहीं अधिक कठोर दण्ड है। बालक का मानसिक स्वास्थ्य बिगड़ जाने पर वह शारीरिक अस्वास्थ्य का भली प्रकार सामना नहीं कर सकता। इसी प्रकार बालक के लिये नहाना, कपड़े पहनना, बटन लगाना, बूट पहनना तो आवश्यक है, परन्तु इन सब गतियों को उन्हें अपने आप करने देना आवश्यक नहीं समझा जाता, तथा इसीलिये उसे करने नहीं दिया जाता। सच तो यह है कि स्वयं स्फूर्ति बालक के मानसिक विकास का प्राण है। स्वयं स्फूर्ति से ही बालक का मन स्वस्थ तथा बलवान हो सकता है। वह शरीर कैसे जीवित रह सकता है जिसे स्वयं स्फूर्ति अर्थात् श्वांस लेने, भोजन पचाने तथा हाथ पांव मारने का अधिकार न दिया जाय। शारीरिक अंग तो स्वयं स्फूर्ति से ही विकसित होते हैं। मन का भी यही हाल है। वह मन कैसे जीवित रह सकता है जिसे स्वयं काम करने का अधिकार ही न दिया जाय। इसलिये जब बालक हमारी आज्ञा के विरुद्ध कुछ गतियां करता है, अर्थात् हमारे

रोकने पर भी स्वयं पीता है, स्वयं बाल सँवारता है, स्वयं कपड़े पह-नता है, बटन लगाता है, बूट पहनता है इत्यादि, तो वह हमारी दृष्टि से अवश्य आज्ञा का उल्लंघन कर रहा है। परन्तु वह अपनी दृष्टि के अनुसार अपने भावी जीवन की तैयारी के लिये प्रयत्न कर रहा है। वह हमारी अनुचित इच्छा की पूर्ति में अपनी मृत्यु देखता है। जैसे बालक पर जबरदस्ती रजाई डाल दी जाय और उसका दम घुटने लगे तो वह उसे उतार फेंकता है, उसी प्रकार जब बालक का मानसिक जीवन हमारी आज्ञाओं से खतरे में पड़ जाता है, तो वह रजाई की तरह हमारी आज्ञा को परे फेंक देता है। बालक की ओर से विद्रोह तथा आज्ञा उल्लङ्घन करना खतरे की घण्टी है, जो इस बात को साबित करता है कि माता-पिता का व्यवहार इतना अत्याचार पूर्ण हो गया है कि वह उसे सहन नहीं कर सकता।

यदि माता-पिता को अपना उत्तरदायित्व सचमुच भली प्रकार निभाना है तो उन्हें ऐसा वातावरण उपस्थित करना होगा जो शारी-रिक तथा मानसिक दोनों प्रकार के स्वास्थ्य के लिये उपयुक्त हो। यह ठीक है कि बालक का शारीरिक विकास भी होना चाहिये। मनोविज्ञान भी इसका विरोध नहीं करता। परन्तु शारीरिक विकास के साथ मान-सिक विकास भी आवश्यक है। क्योंकि शरीर तथा मन का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसलिये दोनों में से किसी की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। कारण, एक का भी निरादर दोनों के लिये रोग का कारण बनता है।

(घ) माता-पिता का चौथा दोष यह है कि वे बालक की गतियों को उनकी अपनी स्वस्थ विधियों की कसौटी पर न कस कर अपनी तथा तरुण जीवन की कसौटियों पर कसते हैं। वे अपने आपको बालक की गतियों का केन्द्र बनाते हैं। यदि बालक की रुचियां तथा गतियां उनकी

बालकों का अजायबघर।

बालक पशु-पक्षियों से खेल रहे हैं।

अपनी रुचियों तथा आदर्शों के केन्द्र की ओर आकृष्ट हों, तथा झुकाव रखती हों तो बालक को वे अच्छा होनहार और सपूत समझते हैं। परन्तु अगर उसका झुकाव उनकी रुचियों के केन्द्र के विरुद्ध हो तो वे उसके लिये बालक को झाड़ते-ताड़ते हैं, तथा अन्य अनुचित तरीकों से उसे अपने आदर्शों की ओर खीचने का प्रयत्न करते हैं। यदि महा-पुरुषों के जीवन के पन्ने उलटे जाएँ तो अधिकांश महापुरुषों के जीवन में यही घटना आती है कि उनके माता पिता उनसे इसलिये निराश रहते थे कि उनकी रुचि उन कामों तथा व्यवसायों में नहीं होती थी, जिनको उनके माता पिता उचित समझते थे। जार्ज स्टीवनसन की कहानी किसने नहीं सुनी होगी। उसने छोटी आयु में एक कहानी लिखी थी, जिसका नाम 'जैकिल एएड हाइड' था। जो आज अँग्रेजी इतिहास में अमर होगई है। स्टीवनसन के पिता जी चाहते थे कि वह बैरिस्टर बने। उन्हें स्टीवनसन की यह प्रकृत्ति पसन्द न आई। उसे छः पैसे देते हुये इन्होंने कहा कि "बेटा! फिर ऐसे व्यर्थ कार्यों में समय नष्ट न करना।"

माता पिता बालकों के लिये व्यवसाय तथा आदर्श नियुक्त करते हैं कि उनका यह बेटा डाक्टर, यह इन्जीनियर, यह व्यापारी तथा यह बैरिस्टर बनेगा। क्यों कि वे बालक को अपनी रुचियों तथा आदर्शों के प्रतिरूप बनाना चाहते हैं। माता पिता की यह वृत्ति 'अहम्' में केन्द्रित है, जिससे वे बालक के सम्बन्ध में अपने उत्तरदायित्व को दोषी बना लेते हैं। माता पिता का फर्ज यह देखना है कि बालक के व्यक्तित्व का आदर्श विकास उसके अपने ढंग तथा ढांचे के अनुसार हो। लेकिन ऐसा करने के बजाय वे अपने आदर्श बालक पर थोप कर इसकी आत्मा को लंगड़-लूला कर देते हैं। दृढ़ और बलवान बालक तो माता पिता की इस कठोरता के खिलाफ विद्रोह करके अपनी आन्तरिक वृत्ति को तृप्त कर लेते हैं। और यही बालक आगे चल कर महा-पुरुष

बनते है। परन्तु साधारण बालक माता पिता के दबाव में दब जाते हैं। वे सदा दुःखी रहते हैं। मनुष्यजाति की व्यक्तिगत अतृप्ति और असन्तोष इसी दबाव का परिणाम हैं।

इस 'अहम्' केन्द्रित वृत्ति के कारण माता पिता बालक से यही मांग करते रहते हैं कि उसका व्यवहार उन जैसा हो। जैसे वे स्वयं चुप करके बैठते हैं, वैसे ही उनका बालक चुप करके बैठे। जो बालक ऐसा करता है, उसे सराहते हैं। लेकिन यदि बालक अपनी अवस्था के अनुसार स्फूर्ति करता है, या चुलबुलापन दिखाता है, या चुप करके नहीं बैठता तो माता पिता उसकी इन हरकतों से प्रसन्न नहीं होते। लेकिन यदि बालक उनकी भांति, उन जैसी बातें करे, उनकी भांति व्यवहार करे तो उसकी महिमा के गीत गाते हैं। इसी प्रकार यदि बालक बहुत जल्दी सफाई करना, निश्चित जगह पर चीजें रखना, समय पर टट्टी जाने आदि जैसी आदतों का अभ्यास करले, जो उस आयु के बालकों में साधारणतया नहीं पाई जातीं, तो माता पिता बड़ा गर्व अनुभव करते हैं। उनका व्यवहार ही उचित व्यवहार है। उनकी जांच, उनके विचार तथा उनके भाव ही बालक के जीवन की कसौटियां हैं। इसलिये बालक पर वे अपना व्यवहार और अपने ही विचार ठूँसते रहते हैं। उनका ऐसा करना वैसे ही है जैसे बड़े पौधे का फूल काट कर नन्हें पौधे की नन्हीं सी टहनी में धागे से बाँध देना। बालक को बाल-पन ही सजता है। युवा को युवावस्था ही सजती है। बूढ़े को बुढ़ापा ही सजता है। बालक का बड़ों की भांति व्यवहार करना बालपन के अद्वितीय सुखों तथा अनुभवों से बञ्चित रहना है, अपने आप को दुखी प्राणी बना देना है। अनेक बालक अपने जीवन के इस अमूल्य कोष को बड़ों की प्रसन्नता की वेदी पर बलिदान कर देते हैं। कौन ऐसा व्यक्ति है जो अपनी इच्छाओं तथा स्वभाव के विरुद्ध सदा ही दूसरों का स्वांग रच

कर प्रसन्न रह सकें। जिसे यह पराधीनता सहनी पड़े, उसके दुःख की कथा ही बालकों की कथा है।

यदि माता-पिता अपनी जिम्मेदारी को भली प्रकार निभाना चाहते हैं तो उनका यह कर्तव्य है कि वे बालक की गतियों के सम्बन्ध में अपने दोषपूर्ण तथा अहमूपूर्ण व्यवहार को तिलाञ्जलि दें तथा बालक को बाल-जीवन की प्रसन्नता का अनुभव कराने में उनके सहायक हों। अहम् से छुटकारा पाते ही माता पिता को पता लगेगा कि बालक तथा उनके काम करने के उद्देश्यों में बहुत अन्तर है। हम बड़ों की गतियां बाहरी गतियों की पूर्ति के लिये होती हैं। हम इसलिये चलते हैं कि हमें किसी विशेष स्थान पर पहुंचना है। बालक इसलिये चलता है कि वह चलने की गति पर प्रभुत्व पाकर अपने मन का विकास करता है। हम इसलिये बोलते हैं कि हम दूसरों द्वारा कोई उद्देश्य पूरा करवा सकें। बालक एक एक शब्द का अनेक बार इसलिये उच्चारण करता है कि वह शब्दों पर प्रभुत्व पा सके, तथा पुनरावर्तन करके अपने स्नायुवों को बलवान बना सके। बालक के आरम्भ-काल की सब गतियों का उद्देश्य हम बड़ों की गतियों से पूर्णतया भिन्न होता है। माता पिता इस भेद को नहीं समझते। इसलिये बालक की गतियों के साथ वे अपनी गतियों का मेल नहीं बिठा सकते। यदि माता को कहीं जाना हो तो वे अपनी गति के अनुसार चलने का समय नियत करते हैं तथा बच्चों को गोद में उठा कर चल पड़ते हैं। बालक स्वयं चलना चाहता है, अपनी गति व उद्देश्यो के अनुसार। उसके चलने का उद्देश्य नियत समय पर पहुंचना नहीं। ऐसे समय में माता पिता तथा बालक के उद्देश्य में संघर्ष होना है और बेचारे बालक को सदा मुंह की खानी पड़ती है। वह निर्बल है न! निर्बलों के साथ यही होता है। बालक स्वयं कुछ करना चाहता ह। उसका उद्देश्य अपने मन का विकास तथा तृप्त

है। परन्तु माता को बालक का स्वयं कंघी करना पसन्द नहीं। वह उसे टेढ़ी मेढ़ी मांग के साथ बाहर किस प्रकार ले जावे ? उसकी शान में जो फ़र्क आता है। इसलिये वह बालक के बाल सँवारने की गति का उत्तर दो चार चाँटे लगा कर, अथवा बुरा भला कह कर उसकी रचना को नष्ट करके अपनी इच्छानुसार बाल सँवार कर देती है। बालक का जीवन उसका अपना तो है नहीं! वह तो स्वांग है, माता पिता की गुड़िया है। उसके अधिकार का क्या मतलब ? माता पिता की जिम्मे-दारीं तो यही है कि बालक को उसने बालपन की गतियों से बञ्चित रक्खें। उसे अपनी इच्छाओं का खिलौना समझ कर अपनी इच्छानुसार दूध पिलावें, स्नान करावें, वस्त्र पहनावें। यही तो उनके प्रेम का प्रकाश है, जिसे मूर्ख मनोविज्ञानी अत्याचार कहते हैं।

बालक के प्रारम्भक वर्ष

बालक सृष्टि की जड़ है। बालक इन्सानियत की बुनियाद है। बालक घर में आई एक बड़ी हस्ती है। छोटी सी चीज समझ कर उसकी उपेक्षा न करें। बालक की भी आत्मा होती है—वह आत्मा, जिस पर सारी दुनियां की इमारत खड़ी की जाती है। इस छोटे से बालक की आत्मा को ठुकरा देना या झिड़क देना उसकी विकसित होने वाली आत्मा की हत्या कर देना है।

बाल-जीवन के प्रथम छः वर्ष बहुत कीमती और जरूरी हैं। मैडम मोण्टीसोरी ने इन सालों को बहुत महत्वपूर्ण बतलाया है। उन्होंने इन वर्षों के दो भाग किये हैं—जन्म से तीन, और तीन से छः। प्रथम तीन वर्षों में बच्चा प्रत्येक चीज को जानना चाहता है। छोटी से छोटी चीज को वह बड़े ध्यान से देखता है। तीन चार महीने पर ही वह हमारी बातों को ध्यान-पूर्वक सुनता है। हमें बातें करते देख कर हँसता है। उसी तरह मुँह बनाता है। ऊँ-ऊँ करता है। आठ माह का होने पर दो अक्षरों के शब्द जैसे—मामा, बाबा आदि बोलने लगता है। एक वर्ष से दो वर्ष तक बच्चा भाषा को ग्रहण करता है। हर एक चीज कों जानना चाहता है। सवालों की झड़ी लगा देता है। उसके

सवालों का जवाब देना चाहिये। यह कह देने से काम न चलेगा कि उसके सवालों का जवाब देने के लिये हमारे पास समय नहीं है। अगर हमारे पास समय नहीं है तो बच्चा पैदा करने की तकलीफ क्यों उठाई ? बालक के सवालों का हमें जवाब देना चाहिये। बार बार पूछने पर भी उकताना या झुंझलाना नहीं चाहिये। बालक को नादान समझना हमारी भूल है।

इस समय बच्चा सब कुछ सीख जाता है। दो वर्ष के बाद बालक में भाषा का इतना विकास हो जाता है कि जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। हम हैरान होंगे कि बालक ने यह सब कुछ सीख कैसे लिया ? तीसरे वर्ष में बच्चा कठिन सवाल पूछने लगता है। पहले हम खुद बताया करते थे। अब बच्चा आवाज दे देकर हमारा ध्यान अपनी ओर खींचता है। अगर हम उसके सवालों का जवाब नहीं देंगे, तो वह झुंझलायेगा और निराश होकर रोने लगेगा।

यह ठीक है कि बच्चे के बहुत से सवालों का जवाब हम नहीं दे सकते। ऐसी अवस्था में उसके सवालों का जवाब मालूम करके फिर उसे बताना चाहिये। लेकिन टालमटोल करके उसकी अन्दरूनी भूख को मारना नहीं चाहिये। यह बालक के भाषा विकास का समय है। इन तीन वर्षों में सीखी हुई भाषा का प्रयोग करके वह अगले तीन वर्षों में उसे अधिक उन्नत और विकसित करेगा।

अब चलने फिरने के बारे में देखिये। अभी बच्चा तीन मास का ही होता है कि हाथ पांव चला कर उसे पकड़ने का यत्न करता है। लेकिन अपने पर काबू न होने के कारण असफल रहता है। छः माह का होने पर जब वह किसी सुन्दर वस्तु को को देखता है तो रेंग कर उसके पास जा पहुंचता है। ये बातें बच्चा किसी से सीखता नहीं। वह जो कुछ करता है, अन्तः प्रेरणा से करता है। हमें उसके रास्ते में

कोई रुकावट नहीं डालनी चाहिये। जमीन पर गद्दे बिछा कर उसके चलने फिरने के लिये स्थान बना देना चाहिये। उसके कमरे में और आस पास रंगीन रिबन लटका देने चाहिये और सुन्दर फूलों के फूलदान रख देने चाहिये। उसके कमरे का सामान सुन्दर रँग का और चमकदार होना चाहिये। रात के समय उसके कमरे में नीले या हरे रंग की रोशनी होनी चाहिये, जिससे बच्चे की आंखें खराब न हों। ये बालक के दिल बहलाने के तरीके हैं, जिनसे उसका विकास होता है।

बच्चा बहुत चौकन्ना होता है। जरा सी आहट सुनते ही वह करवट बदल लेता है। उसे रंगीन बजने वाला झुनझुना देना चाहिए। दांत निकलने के समय बच्चे को हाथी दाँत की माला, छल्ले और रबड़ के खिलौने देने चाहिए। अगर बच्चा इन्हें तोड़ फोड़ दे, तो उस पर जरा भी नाराज न होना चाहिए।

छोटा बच्चा कई प्रकार के खेल खेलता है। उसके खेलों में भाग लेना चाहिए। एक ही खेल को बार बार खेलना, एक ही सवाल को बार बार पूछना बालक का स्वभाव है। इससे घबराने या तंग होने की आवश्यकता नहीं है। यदि बच्चा एक खिलौने को चालीस बार भी गिराता है, तो नीचे से उठा कर उसे पकड़ा देना चाहिये। यदि एक बार भी आपने नहीं कह दिया तो बच्चे का खिला हुआ चेहरा मुरझा जायेगा। उसका छोटा सा दिल टूटे हुए गजरे की तरह चूर चूर हो जायगा। उसे फिर ताजा करना असम्भव होगा।

जब बच्चा घुटनों के बल चलने लगे तो चलने फिरने की उसे पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिये। रास्ते में इधर उधर पड़ी हुई चीजों को एक तरफ कर देना चाहिए, ताकि उनसे टकरा कर उसे चोट न लग जाय। गन्दी चीजें भी उसके रास्ते से हटा देनी चाहिए, ताकि उन्हें वह मुँह में न डाल सके। टूटने फूटने वाली चीजें दूर रख देनी

चाहिए, ताकि टूट फूट जाने पर उसको बड़े बूढ़ों के गुस्से का शिकार न बनना पड़े। इस अवस्था में घुटनों के बल चलना बच्चे का सब से बड़ा काम है। यही उसका खेल है, यही उसका व्यायाम है।

बच्चा कदम बढ़ाता है, चलना सीखता है। वह हर समय चलना चाहता है। वह हर कदम पर गिरता है। हजार बार गिरने पर भी वह हिम्मत नहीं हारता। उसी लगन से उठ कर वह फिर चलने लगता है। इसलिये कमरे में कैद न करके उसको आजादी से चलने फिरने का मौका देना चाहिए। बच्चे को सर्दी गर्मी से बचाना हमारा फर्ज है। लेकिन अपने क्षणिक सुख और आराम के लिये उसकी भावनाओं को कुचलना, उसे दबा कर रखना हमारा हक नहीं है।

डेढ़ दो साल का बच्चा लम्बी सैर करना पसन्द करता है। सैर कराते समय हमारा यह ध्येय होना चाहिये कि बच्चे को हम अपने साथ सैर करने न ले जायें, बल्कि हम बच्चे के साथ सैर करने जांय। अगर हमें सैर करना है तो हम अकेले जा सकते हैं। बच्चे को साथ ले जाने की जरूरत नहीं। हमारी सैर में और बच्चे की सैर में बड़ा अन्तर है। हम जल्दी जल्दी चलना चाहते हैं, और बच्चे को जल्दी जल्दी चलने के लिये मजबूर करते हैं। छोटी छोटी टांगों और छोटे छोटे कदमों से हम अनहोनी बातों की आशा रखते हैं। अपनी उन्नति के लिये बच्चे ने आप ही कानून बनायें हैं। हमारे बनाये हुए कानूनों पर वह नहीं चल सकता। बच्चा अपनी टांगों और आंखों दोनों से सैर करना चाहा है।— चलते चलते बच्चा जब दो कुत्तों को खेलते देखता है, तो वहीं खड़ा हो जाता है, और उनके बारे में अनेक सवाल पूछता है। आगे चल कर चार पांच बच्चे खेलते नजर आते हैं, तो वहीं ठहर जाता है। कुछ दूर और चल कर पानी को देख कर उछल पड़ेगा और पुकारने लगेगा—'मां पानी' इस प्रकार घण्टे डेढ़ घण्टे में दो तीन फर्लांग

सैर कर सकेगा। हमें यह न समझना चाहिये कि यह समय व्यर्थ ही गया। इस प्रकार की सैर बच्चे की शिक्षा का आवश्यक अंग है। इसलिये धैर्य और शान्ति से काम लेना चाहिये। साल दो साल बाद बच्चा बड़ा होकर स्वतन्त्र हो जायगा, और तब आपको सैर कराने की आवश्यकता न होगी। वह आप ही सब कुछ कर लेगा। हम अपने आराम की खातिर बच्चे को बच्चागाड़ी में बिठा देते हैं, या गोद में ले लेते हैं। इससे बच्चे को बड़ी हानि होती है। उसकी इच्छाएँ चकनाचूर हो जाती हैं। उसका विकास रुक जाता है। वह ज्ञान से वञ्चित रह जाता है।

जन्म के समय बच्चा पराधीन होता है। शुरू शुरू में वह करवट भी नहीं ले सकता। लेकिन जब वह उठ कर बैठने लगता है, या चारपाई पकड़ कर खड़ा होने लगता है, तो इन क्रियाओं को बार-बार बड़े चाव-चाव से करता है। इन क्रियाओं को करके बालक बड़ा खुश होता है। बालक को ये क्रियाएँ करते देखकर पहले तो हम खुश होते हैं, लेकिन फिर उकता जाते हैं। हम यह महसूस करते हैं कि बालक अब थक गया है। उसने अपना चाव पूरा कर लिया है। अब उसे बस करना चाहिये। पहले तो हम उसे प्यार से मना करते हैं, और रोकते हैं और उसके न मानने पर जबरन पकड़ कर लिटा देते हैं। बालक रोने लगता है। हम उसे छोड़ देते हैं, और वह फिर अपने काम में लग जाता है।

हम दुनियां को देख चुके हैं, अनुभव कर चुके हैं। लेकिन बालक को अभी इस दुनियां को देखना और समझना है। जन्म के पहले ही दिन से वह अपने आस पास की दुनियां को देखना और परखना शुरू कर देता है। उसकी जिज्ञासा का दायरा आहिस्ता-आहिस्ता बढ़ता जाता

है। वह जिस नई चीज को देखता है, उसे खूब अच्छी तरह देखता और परखता है।

इसके अलावा बच्चे की यह कोशिश होती है कि जो काम वह कर सकता है, उसे खुद न करे। पराधीनता से वह छुटकारा पाना चाहता है। अगर वह चलना सीखता है तो गिरता-पड़ता धुटने-टखने और मुँह माथे को जख्मी करके भी आप ही चलेगा। आपकी उँगली या आपका सहारा नहीं लेगा। अगर वह थाली में अपने हाथों चावल खा सकता है, तो उसे अपने हाथ से ही खाने में तसल्ली होगी। भले ही उसके हाथ-मुँह और कपड़े खराब हो जांय। आपके हाथ से चावल खाना वह हर्गिज पसन्द नहीं करेगा।

खोज करना और पराधीनता से छुटकारा पाना—ये दो गुण बच्चे में शुरू से होते हैं। इनके द्वारा वह अपना मानसिक विकास करता है। इन दोनों वृत्तियों को दबाना हानिकारक है।

मिट्टी और गर्द से खेलता, इसे उठाता और सिर पर डालता बच्चा आपके लिये एक मुसीबत है। लेकिन उसने एक नई बात सीखी है। आप क्यों रोकते हैं? अपने आराम और सुविधा के लिये। बच्चा नहीं जानता कि आपकी तकलीफ क्या है और आराम क्या? मगर आप उसके चाव को, उसकी खुशी को जानते हुये भी क्यों उसके नन्हें दिल को ठेस लगाते हैं। आपके रोकने से वह रुकेगा नहीं। मना करने पर आपका कहना नहीं मानेगा, उलटा उसी काम को बार बार करेगा। रोज-रोज करेगा। दिन में कई बार करेगा। आपकी परेशानी बढ़ायेगा। लेकिन चन्द दिन के बाद उसकी दिलचस्पी खुदबखुद कम हो जायगी। वह कोई नया काम शुरू कर देगा। किसी नई खोज में लग जायगा। इसलिये रोकने के बजाय आप भी उसके खेल में शरीक हो जाँय। खेलने के लिये साफ मोटी रेत मँगवा दें। इससे

कपड़े भी कम खराब होंगे और बच्चा गन्दी मिट्टी के कीटाणुओं से भी बच जायगा।

मिट्टी से खेलते-खेलते बच्चा कभी मुँह में मिट्टी डाल ले तो परेशान होने या उसे मारने-पीटने की जरूरत नहीं है। आप तो उसका मुँह साफ कर दें। बच्चा हर चीज को मुँह में डाल कर देखना चाहता है। उसका निरीक्षण करना चाहता है। उसका रहस्य मालूम करके अपनी जिज्ञासावृत्ति को तृप्त करना चाहता है। एक दो बार मिट्टी चख कर या खा कर खुद ही छोड़ देगा। अगर नहीं छोड़ता और मिट्टी खाने का आदी हो जाता है, तो मालूम करें कि बच्चे के मिट्टी खाने का असली कारण क्या है? क्या वह कोई चीज मुँह में डाल कर चूसना चाहता है या उसके शरीर में किसी क्षार की कमी है? जो भी कारण हो, उसका ठीक-ठीक पता लगा कर उसी के मुताबिक काम करें।

बच्चा खुद चारपाई से नीचे उतरना चाहता है, या कुर्सी अथवा जीने पर खुद चढ़ना चाहता है तो उसकी इस इच्छा को पूरा करें। रोकें हरगिज नहीं। अगर आपने रोका तो उसकी यह इच्छा और भी तेज हो जायगी। हमारे सामने कोशिश करने के बजाय हमारी गैरहाजरी में परीक्षण करेगा। ऐसी हालत में चोट आदि लगने का खतरा है। यह कभी न भूलिये कि बालक को चढ़ने और उतरने में बड़ा मजा आता है। वह बार-बार इस क्रिया को किया करता है, और खुश होता है।

आपका बच्चा बड़े चाव से आपके पास आता है। आप बक्स या सूटकेस से उसके कपड़े निकाल रहे हैं। बच्चा अपने कपड़े देख कर प्रसन्नता से उछल पड़ता है—"माता जी, मेला फलाक" यह कहता हुआ वह उसे अपने हाथ से खींचता है। फ्रॉक नीचे जमीन पर गिर

जाता है। आप क्रोध में आकर बच्चे को एक थप्पड़ लगा देते
"अरे, यह क्या कर दिया। छिः! छिः!! सारा फ्रॉक गन्दा कर दिय
चल भाग यहां से। खबरदार! फिर कभी हाथ लगाया तो।" अ
सूटकेस और फ्रॉक को देख कर उसे जो खुशी हुई थी, उसका आ
बात की बात में खून कर दिया। कितनी माताएँ हैं, जो फ्रॉक
खराब होते देख कर प्यार से कहती हैं—"हां, मुन्ना! यह सुन्दर फ्र
तुम्हारा ही है। कल तांगे पर चलेंगे, तब पहनना। अब ठीक क
अपने सूटकेस में रखदो।" कितना जादू का असर होता है इन मं
शब्दों का। बच्चा खुशी के मारे फूला नहीं समाता। वह कहता है-
"टांगे पर, कल, अच्छा।"

आपका बच्चा अपना फ्रॉक खुद पहनना चाहता है। आप उ
पहनने नहीं देते। आप उसे खुद पहनाना चाहते हैं। लेकिन बच्चा इ
पसन्द नहीं करता। बच्चे को अपना फ्रॉक खुद पहनने दें। पहनने
उसे तरीका बताएँ। अगर वह न पहन सकेगा तो खुद ही दौड़ क
आपके पास आयेगा। उस समय यह कर उसे शर्मिन्दा न करें—"ब
पहन लिया। मैंने कहा था, नहीं पहना जायगा। लेकिन तू कब कि
की सुनता है।" ऐसा शब्द सुन कर बालक का दिल टूट जाता है
वह अपने को हीन समझने लगता है। अपने को तुच्छ समझने क
बालक को मौका न दें।

बालक को अपने सब काम आप करने दें। आप तो उसके लि
आवश्यक साधन भर जुटा दें। प्यार प्यार में काम करने का तरीक
सिखा दें। उसके कामों का मजाक न उड़ायें। परिणाम को अप
दृष्टि से न देखें, बल्कि बालक की ही दृष्टि से देखें। बालक जब का
कर रहा हो तो उसके काम में जरा भी विघ्न न डालें। जैसा वह क
सकता है, उसे खुद ही अपने प्रयत्न से करने दें। उसकी धीमी रफ्तार प

बालक विश्राम कर रहे हैं।
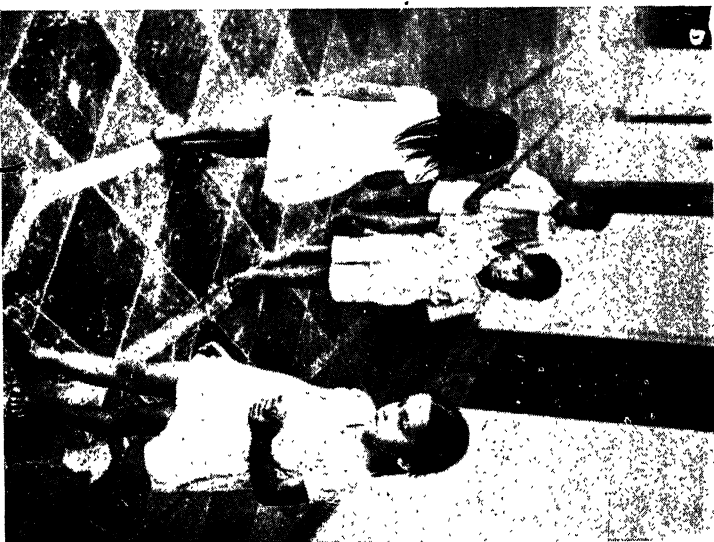
बालक अपने शरीर को साधने का व्यायाम कर रहे हैं।

गलत तरीके की परवा न करें। उसे अपने अनुभव से सीखने दें। उसे अपने पैरों पर खड़ा होने दें। उसके फूटते हुये स्रोत को न रोकें। उसे अपनी कैद में रखने की कोशिश न करें। अगर वह आजादी चाहता है तो उसे आजाद होने दें। जबरन अपनी सलाह उस पर न लादें। सहायता मांगने पर ही सहायता दें। सलाह मांगने पर ही सलाह दें। जितनी खुशी बालक को अपने हाथों काम करके होती है, उतनी किसी से करा कर नहीं होती। अगर हार कर बालक काम करना छोड़ दे तो भी उसे उत्साहित करें, निराश न करें।

बालक की रक्षा और बचाव की जिम्मेदारी आप पर है। अगर शुरू से ही आपने बच्चे का साथ दिया है, तो वह आपकी सलाह को जरूर मानेगा। अगर आप उसकी बात सुनते रहे हैं, उसकी इच्छाओं और रुचियों को पूरा करते रहे हैं, उसके काम में दिलचस्पी लेते रहे हैं, उसे उत्साहित करते रहे हैं, उसके कामों की दाद देते रहे हैं, उसके विश्वासपात्र बने हुये हैं तो वह आपकी नेक सलाह को जरूर मानेगा। लेकिन अगर आप हमेशा नहीं से काम लेते हैं, तो आपका बच्चा आपकी नेक सलाह की ओर भी ध्यान न देगा। हमेशा की मनाही का यही नतीजा निकलता है। रोक टोक से बालक की रुचियां कुचली नहीं जा सकतीं। फूटते हुये स्रोत का रुख किसी दूसरी तरफ मुड़ जाता है। बच्चा गलत रास्ता अख्तियार कर लेता है। शरारत करने में उसे मजा आता है। माता-पिता की आज्ञा का वह उल्लङ्घन करता है। जिस बात से रोका जाय, उसे ही करता है। रोक टोक से बालक की मनोवृत्ति ऐसी ही बन जाती है। यह सब कुछ हमारे गलत व्यवहार का ही परिणाम है।

ज्यों-ज्यों बालक बड़ा होता है, उसका अनुभव बढ़ता है। उसक इच्छाओं और रुचियों में भी वृद्धि होती है। इसलिये अब उसे पहले

से ज्यादा आजादी मिलनी चाहिये। दो तीन साल का बच्चा अपना अलग सूटकेस या ट्रङ्क चाहता है, जिसमें अपने कपड़े आप रख सके और आप ही निकाल सके। वह आपकी इच्छा के अनुसार उनकी ठीक तह न कर सकेगा, आपकी तरह सजा कर भी न रख सकेगा। लेकिन इसकी आप परवा न करें। जब तक वह आपसे मदद न मांगे, आप उसके काम में दखल न दें। बच्चे का सूटकेस ऐसी जगह रखें, जहां उसका हाथ आसानी से पहुंच सके।

कीलें और खूंटियाँ बालक के बराबर की ऊँचाई पर लगाएँ, ताकि उन पर अपने कपड़े वह आप लटका सके, और उतार सके। बच्चे को अलग प्याला, गिलास, थाली, चमचा और कटोरी आदि सब चीजें दे दें। इन चीजों पर उसका पूरा अधिकार होना चाहिये। वह उन्हें अपनी खुशी से जहां चाहे रखे, जिस तरह चाहे इस्तेमाल करे। स्थान की सफाई के लिये एक छोटी झाड़ू या ब्रुश दे दें। दोस्तों को बिठाने के लिये दरी या कुर्सी दे दें। और भी जरूरी सामान उसके लिये जुटा दें। तात्पर्य यह कि उसे हर प्रकार से स्वतन्त्र कर दें, ताकि स्वतन्त्र रूप से वह अपना विकास अपने आप कर सके।

शारीरिक विकास—

पहले बारह महीनों में बच्चे के शरीर के प्रत्येक अंग में बड़े-बड़े परिवर्तन होते हैं। इन ३६५ दिनों में एक नन्हें चूं चूं करते बालक से एक उछलता-कूदता, शोर मचाता बालक बन जाता है। इन दिनों में बालक प्रति घण्टा प्रति दिन खूब फलता फूलता और उन्नति करता है। प्रत्येक बच्चे की शारीरिक और मानसिक उन्नति की गति भिन्न-भिन्न होती है। परन्तु साधारणतया यह उन्नति इस प्रकार होती है:—

पहला दिन—बच्चा अधिकतर सोया रहता है, और किसी ओर ध्यान नहीं देता।

पहला सप्ताह—सिर्फ छाया में आंखें खोलता है। सप्ताह के अन्त तक धीमी रोशनी में भी आंखें खोल लेता है।

पहला महीना—अपने आस-पास दृष्टि दौड़ाता है, प्रसन्नता प्रकट करता है, हिलती हुई वस्तुओं को देखता है, आवाज सुनता है, सूंघने और चखने लगता है।

दूसरा महीना—बच्चा ध्यान से देख सकता है, माता-पिता को पहचान लेता है, देख कर मुस्कराता है, हिलती हुई चीजों को ध्यान से देखता और आवाज को ध्यान से सुनता है।

तीसरा महीना—हँसता है, दूसरों की ओर फिर कर देखता है, जोर से हाथ-पांव मारता है, जितनी देर जागता रहता है, चुस्ती से हिलता डुलता है।

चौथा महीना—अपना सिर सँभाल लेता है, हिलती चीजों से खेल कर खुश होता है, नये आदमियों के पास जाने में झिझकता है।

पांचवां महीना—बैठ कर खुश होता है, और जोर-जोर से हँसता है।

छठा महीना—किसी भी चीज को अपने हाथ से मुंह में डाल लेता है। पांवों की उँगलियां मुंह में डाल लेता है। वजन दुगुना हो जाता है।

सातवां महीना—शोर मचा कर खुश होता है, चीजें फेंकता है। दाँत निकलने लगते हैं।

आठवां महीना—आप उठ कर बैठ सकता है, और सीधा भी बैठ जाता है।

नवां महीना—घुटनों के बल चलना शुरू कर देता है।

दसवां महीना—चारपाई या कुर्सी को पकड़ कर खड़ा होने की कोशिश करता है।

ग्यारहवां महीना—किसी चीज के सहारे खड़ा होता है, और कुछ देर बिना सहारे भी खड़ा हो जाता है।

बारहवां महीना—वजन तिगुना हो जाता है। छः दाँत निकल आते हैं। कुछ शब्द बोल सकता है। खुद-बखुद कदम उठा सकता है।

एक वर्ष से सवा वर्ष—बच्चा चलना सीख जाता है। खड़ा होकर आप बैठ सकता है। अपने हाथ में पेन्सिल पकड़ कर लकीर खींचने का प्रयत्न करता है। अपनी कटोरी या गिलास हाथ में पकड़ कर पानी पी सकता है। कपड़े पहनाने के समय अपने हाथ-पांव ठीक कर लेता है।

सवा वर्ष से डेढ़ वर्ष—तलुए की हड्डियां जुड़ जाती हैं। बच्चा अकेला खड़ा हो सकता है, चल सकता है। चार-पांच शब्द बोल सकता है। अपने हाथ में चम्मच पकड़ कर खाने की कोशिश करता है।

डेढ़ से पौने दो वर्ष—चारपाई या कुर्सी पर आप चढ़ सकता है। पेन्सिल से लकीरें खींच सकता है। अपनी आंखें, नाक, मुँह बना सकता है। चम्मच लेकर साधारणतया अच्छी तरह खा सकता है। पुस्तक के पृष्ठ उलट-पुलट करके चित्र देख सकता है। अपने जूते आप पहनना चाहता है, पर सफलता कम मिलती है।

पौने दो से दो वर्ष—अकेला काफी चल फिर सकता है। उलटा भी चल सकता है। आम चीजों की तसवीरें देख कर बता सकता है। छोटे-छोटे दो शब्दों के वाक्य बोल सकता है। बात सुन कर दोहरा सकता है। जो चीज खाना चाहता है, माँग लेता है। टट्टी की हाजत हो तो बता सकता है।

दो वर्ष का बच्चा—बहुत कुछ कर सकता है। दौड़ सकता है। लकड़ी के पांच छः टुकड़े (ब्लाक) एक दूसरे के ऊपर रख कर बुर्ज बना

सकता है। उनको आगे पीछे रख कर गाड़ी बना कर चल सकता है। कहानियाँ बड़े चाव से सुनता है। किसी घटना का अपनी तोतली बोली में वर्णन कर सकता है। मिट्टी व रेत में खेल कर बड़ा खुश होता है दो साल के बच्चे का पेशाब आम तौर पर कपड़ों में नहीं निकलता। करवाने पर करना सीख जाता है। सोलह दाँत निकल आते हैं। वजन जन्म के समय से चौगुना हो जाता है।

वजन और लम्बाई—

(१) चार पांच महीने के बच्चे का वजन जन्म के समय के वजन से तकरीबन दुगुना हो जाना चाहिये। (२) एक वर्ष के बच्चे का वजन जन्म के समय के वजन से तिगुना हो जाना चाहिये। (३) आम तौर पर स्वस्थ बच्चे का वजन जन्म के समय तीन सेर से साढ़े चार सेर तक होना चाहिये। कुछ बच्चों का वजन इससे अधिक भी होता है। (४) कुछ बच्चों का वजन जन्म के समय डेढ़ सेर के करीब ही होता है। ठीक ढंग से लालन-पालन करने से ये बच्चे अच्छे रह सकते हैं। (५) लड़के का वजन जन्म के समय लड़की के वजन से अधिक होता है। लड़के के लिये चार साढ़े चार सेर और लड़की के लिये पौने चार अच्छा होता है। (६) बहुत से बच्चों का वजन पहले तीन दिन में कम हो जाता है, और फिर बढ़ जाता है। (७) दाँत निकलने के समय, दूध छुड़ाने के समय, और गर्मी के दिनों में कुछ दिनों के लिये बच्चों का वजन घट जाता है। (८) केवल वजन ही नहीं देखना चाहिये। यह तो बच्चे की उन्नति का एक चिन्ह है। वजन बढ़ाना ही हमारा कर्तव्य नहीं होना चाहिये। फूले हुये मांस से कुछ फायदा नहीं। बच्चे के पट्ठे और हड्डियां मजबूत होनी चाहिये। (९) पहले वर्ष में बच्चा हर माह अपना वजन बढ़ाता है। परन्तु आने वाले वर्षों में वजन की

रफ्तार घटती जाती है। दूसरे वर्ष में तीन चार सेर और चौथे वर्ष में डेढ़ दो सेर बढ़ता है।

लम्बाई की औसत परिवार पर निर्भर होती है। परन्तु साधारणतया बच्चे पहले साल में अपने जन्म की लम्बाई से ६ इञ्च बढ़ जाते हैं। आम तौर पर साधारण बच्चा अपने पहले जन्मोत्सव के समय २६–३० इञ्च लम्बा होना चाहिये, और दूसरे उत्सव पर लम्बाई ३३–३४ इंच होनी चाहिये। उसके बाद उसकी लम्बाई उसके परिवार पर निर्भर होती है। परन्तु फिर भी बच्चे को वर्ष में दो तीन इञ्च अवश्य बढ़ना चाहिये।

वजन और लम्बाई का चार्ट

अवस्था	वजन सेर छटांकों में	लम्बाई इंचों में
जन्म के समय	तीन सेर सवा दस छटांक	१६॥
एक माह	चार सेर दो छटांक	२०॥
दो माह	पांच सेर पौने दो छटांक	२१
तीन माह	पांच सेर सवा तेरह छटांक	२२
चार माह	छः सेर ग्यारह छठांक	२३
पांच माह	सात सेर पौने पांच छटांक	२३॥
छः माह	सात सेर साढ़े बारह छठांक	२४
सात माह	आठ सेर सवा चार छटांक	२४॥
आठ माह	नौ सेर	२५
नौ माह	नौ सेर साढ़े ग्यारह छटांक	२५॥
दस माह	नौ सेर साढ़े पन्द्रह छटांक	२६
ग्यारह माह	दस सेर सवा तीन छटांक	२६॥
एक वर्ष	दस सेर पन्द्रह छटांक	२७

दो वर्ष	तेरह सेर दस छटांक	३८

ये वजन बिलकुल पूरे नहीं, अनुमानित हैं।

नींद और विश्राम--

जन्म के बाद बच्चे की सब से पहली आवश्यकताएँ हैं:—गरमाई, विश्राम, खामोशी और नींद। बच्चे के आस-पास शोर गुल कतई नहीं होना चाहिये। आराम के लिये सोना बड़ा जरूरी है। जन्म लेने के बहुत समय बाद तक बच्चा सोया ही रहता है, और सोया रहना चाहिये। एक डेढ़ महीने तक बच्चा केवल दूध पीने के लिये ही जागता है। अवस्था के अनुसार रात दिन के चौबीस घण्टों में बालक की नींद इस प्रकार होनी चाहिये—

पहला महीना	२२ घण्टे
दूसरा महीना	२१॥ घण्टे
दो से तीन माह तक	२१ घण्टे
तीन से पांच माह तक	२० घण्टे
पांच से सात माह तक	१६ घण्टे
सात से बारह माह तक	१८ घण्टे
एक वर्ष	१५ घण्टे
चार वर्ष	१३ घण्टे

गहरी नींद के लिये बालक के नीचे गरम और गुदगुदा बिस्तर चाहिये। कपड़े गरम तो हों, लेकिन हलके हों। तंग और बहुत से कपड़े बालक को तंग करते हैं। लाढ़ प्यार में आकर सोये हुये बालक को कभी नहीं जगाना चाहिये। उसकी नींद और आराम में खलल डालना हानिकारक है। पहले दिन से ही बालक को अलग खाठ पर सुलाना चाहिये। माता के साथ सोना बालक के आराम तथा शारी-

रिक और मानसिक उन्नति के लिये हानिकारक है। माता के हिलने और करवट लेने से बालक के आराम में विघ्न पड़ता है। माता के नाक और मुँह में से निकलने वाली गन्दी वायु बालक के अन्दर जाकर रोग उत्पन्न कर सकती है। इस समय माता-पिता को बहुत संयम से काम लेना चाहिये। उसके सामने अपनी वासना पर काबू रखना चाहिये। बालक चाहे कितना ही नन्हा क्यों न हो, वह हर एक घटना को ध्यान से देखता है, और अपनी बुद्धि के अनुसार उसका मतलब भी निकालता है। सोया हुआ बालक भी कई बार अपनी आंखें खोल कर इधर-उधर देखता है। इसीलिये मनोविश्लेषकों का मत है कि बालक को शुरू से ही अलग कमरे में सुलाना चाहिये। पहले साल अगर अलग कमरे में न सुलाया जाय तो कम से कम उसकी खाट तो अवश्य ही अलग होनी चाहिये।

बालक की खाट बड़ों की खाट जैसी नहीं होनी चाहिये। उसके आस-पास जंगला होना चाहिये, जिससे करवट लेते समय बालक नीचे न गिर जाय। बालकों का सिर बड़ा नरम होता है। पहले साल उसके सिर की हड्डियां जुड़ी हुई नहीं होतीं। इसलिये नीचे गिरने से उसके दिमाग को हानि पहुंचती है। बाजार से बेबीकाट (बालक की खाट) बनी बनाई मिल सकती हैं। बेंत की या बांस की खाट हलकी होती है। लकड़ी की बड़ी और भारी होती है। बेबीकाट के चारों तरफ जंगला होता है। एक तरफ का जंगला ऊपर नीचे हो सकता है, ताकि बालक को आसानी से लेटाया जा सके। यदि बालक के लिये बेबीकाट न खरीदी जा सके तो पहले दो वर्ष बालक को ऐसी खाट पर लेटाया जाय, जिस पर से वह गिर न पड़े। दूसरे वर्ष के बाद बालक को ऐसी खाट पर सुलाएँ जिस पर से बालक खुद उतर चढ़ सके।

ऊपर नींद का जो समय दिया गया है, वह अनुमान से दिया गया

है। बिलकुल ठीक अन्दाजा देना असम्भव है, क्योंकि प्रत्येक बालक स्वभाव और आदत में दूसरे से भिन्न होता है। यदि कोई बालक दिये हुये समय से बहुत कम सोता है, या सोते सोते डर कर जाग उठता है, या रात को बहुत बार जागता है, बड़ी कठिनाई से सोता है, लोरी देकर सुलाना पड़ता है, तो समझना चाहिए कि उसकी देख-रेख ठीक नहीं हो रही है, या उसकी सेहत में कोई खराबी है। यह खराबी शीघ्र दूर करनी चाहिये।

जो बालक सोते समय माता-पिता को तंग करते हैं, उनके लिये अधिकतर माता-पिता ही जिम्मेवार होते हैं। शुरू से ही बालक को हिला डुला कर सुलाने की आदत न डालें। स्वस्थ बालक अपने आप आराम से सो जाता है। बालक को भूखा न रखें, उसे पूरी और स्वास्थ्यप्रद खुराक नियत समय पर दें। यदि रात को बालक जाग जाय तो दूध कभी न पिलाएँ, (दस-बारह और पाँच-छः के बीच) सिर्फ थोड़ा पानी पिला कर सुला दें। पानी मौसम के अनुसार गरम या ठण्डा होना चापिये।

आपम्भ से ही बालक को चारपाई पर लिटा कर सोने की आदत डलवाएँ। अपनी गोद में सुला कर फिर चारपाई पर सुलाने की आदत बड़ी खराब है। छोटी उम्र में तो यह चालाकी चल जायगी। लेकिन बड़ा होने पर बालक गोद में सोने के लिये ही जिद करेगा। भूल कर भी बालक को ऐसी आदत न डालें। दादी, नानी, मौसी, बुआ आदि सब को यह बात समझा देनी चाहिये, नहीं तो बाद में बहुत तकलीफ उठानी पड़ेगी। सरदी में ठण्ड से, और गर्मी में मच्छर, मक्खी से बचाना चाहिये। सोते समय बालक का मुंह और सिर बिलकुल खुला रहना चाहिये।

भोजन—

मनुष्य के बालक के लिये प्राकृतिक भोजन माता का दूध है। और कोई भी खुराक इसका मुकाबला नहीं कर सकती। गाय का दूध बछड़ी-बछड़े के लिये है। मनुष्य के बालक के लिये वह नहीं बनाया गया। जो बालक माता के दूध पर पलते हैं, उनकी मृत्यु औसतन कम होती है। बीमारी का मुकाबला करने की शक्ति भी इनमें अधिक होती है। बोतलों के दूध पर पले बालकों में यह शक्ति नहीं होती। जन्म से पूर्व बालक का आवश्यकता के अनुसार भोजन माँ के अन्दर से ही मिलता है। उस समय बालक का मदा काम नहीं करता। जन्म के बाद खुराक बालक के मुंह में से गुजर कर मैदे और आँतों में से होकर जाती है, और फालतू सब कुछ अन्तड़ियों और गुर्दों के रास्ते बाहर निकल जाता है। बालक का मैदा जन्म के बाद ही काम करना शुरू करता है, और आहिस्ता-आहिस्ता दूध हजम करना सीखता है। माँ का दूध पहला कुछ दिन पतला होता है। इसमें क्लोसूट्रम (Chlostrum) अधिक होता है, इसमें खून से मिलते जुलते पदार्थ (प्रटीन) होते हैं। यह खुराक मैदे की खास सहायता के बिना खून में चली जाती है, एक सप्ताह के बाद माता के दूध में क्लोसट्रम की मिलावट कम हो जाती है, और दूध गाढ़ा होता जाता है। इतनी देर में बालक का मैदा और दूसरे अंग काम करना सीख लेते हैं। बालक माँ का दूध शीघ्र पचा लेता है गाय का दूध भारी होता है, क्योंकि उसमें मांस बनाने वाले पदार्थ अधिक होते हैं। मां के दूध में चिकनाई के कण छोटे-छोटे होते हैं। उनका हजम कर लेना बालक के लिये आसान होता है, लेकिन गाय के दूध में चिकनाई के कण मोटे मोटे होते हैं, जिन्हें पचाना बालक के लिये कठिन होता है। अपनी माँ का दूध चूंसने से बालक के मुंह के सब भागों का व्यायाम हो जाता है। उसके जबड़ों में खून अधिक

आता है, जिससे दाँत निकलने में सहायता मिलती है। जब बालक अपनी माँ का दूध चूसता है तो वह अपने हाथ-पांव मारता है, जिससे उसके सारे शरीर की कसरत हो जाती है। अपना दूध पिलाना माता के लिये भी लाभदायक है। इससे बालक के जन्म से पहले जैसी शक्ति प्राप्त कर लेती है। गर्भ के समय अधिक खून शरीर के निचले भाग में जाता रहता है। छाती से दूध पिलाने से खून छाती की ओर आता है, जिससे शरीर का निचला भाग आवश्यकता के अनुसार सिकुड़ जाता है। माँ का दूध बिलकुल स्वच्छ होता है। इसमें किसी प्रकार के कीटाणु नहीं होते और जैसा गरम दूध बालक को चाहिये, वैसा ही मिल जाता है। बालक की शारीरिक उन्नति के लिये दूध में जिन-जिन चीजों की मिलावट होनी चाहिये, वह माता के दूध में ही पर्याप्त मात्रा में मिल सकती हैं। डब्बे के तैयारशुदा दूध या और किसी जानवर के दूध में वह नहीं मिल सकतीं। अपना दूध पिला कर माता बालक से अधिक स्नेह पैदा कर सकती है, जो बालक के विकास के लिये अनिवार्य है। किसी दूसरी मां का दूध भी बालक के लिये उतना लाभदायक नहीं हो सकता, जितना कि अपनी माँ का दूध '

यदि माँ का दूध कम हो तो भी बालक को छाती से अवश्य लगाना चाहिये, चाहे उसे बहुत थोड़ा दूध ही क्यों न मिले। उसके बाद दूसरा दूध दिया जा सकता है। दूध ठीक रखने के लिये माँ को स्वाथ्य-प्रद और सन्तुलित भोजन* करना चाहिये।

---

* स्वस्थ भोजन देने पर भी माँ दूध न उतरे तो मगरमच्छ का खारजा (फुजला) जो किसी भी मछुए से आसानी से मिल सकता है, लेकर उसे खूब बारीक पीस लें, और फिर दोनों स्तनों पर एक एक माशा अच्छी तरह मल दें। जब स्तनों में चींटी सी चलती महसूस होने लगें तो गुनगुने पानी से स्तनों को धो डालें, और थोड़ा सा ध निकाल कर

यदि माँ को कोई शारीरिक या मानसिक रोग हो तो बालक को उसका दूध नहीं पिलाना चाहिये।

अगर बालक को ऊपर का दूध देना ही पड़े तो बकरी के दूध को फाड़ कर, दही निकाल लिया जाय और पानी बालक को दिया जाय। इसमें खुराक के सभी आवश्यक भाग होते हैं, और इसे बालक आसानी से पचा भी सकता है। बकरी का दूध न मिले तो गाय का दूध इसी प्रकार फाड़ कर उसका पानी दिया जा सकता है। जब भी यह पानी देना हो तो ताजा बनाना चाहिये, और बनाते समय स्वच्छता का खास-तौर से ध्यान रखना चाहिये।

पानी मिलाया हुआ, या सौंफ डाल कर उबाला हुआ गाय का दूध भी बालक के लिये अच्छी खुराक नहीं है। दूध में चूने का पानी डालने से उसमें चूने का अंश आजाता है, और दूध जरा हलका हो जाता है। लेकिन यह दूध भी फटे हुये दूध के पानी का मुकाबला नहीं कर सकता। किसी रोगी पशु का दूध बालक को भूल कर भी नहीं देना चाहिये।

दूध पिलाने का क्रम इस प्रकार होना चाहियेः—

पहला दिन—जन्म के बाद जब बालक और माँ काफी आराम कर चुकें, तब बालक को तीन-चार मिनट दोनों छातियों से दूध पिलाने का प्रयत्न किया जाय। तीन-तीन घण्टे के बाद ऐसा किया जाय।

दूसरा दिन—पहले दिन की तरह बालक को शौक से दूध चूसने दिया जाय। यदि दूध न निकले तो उबाले हुये पानी के कुछ चम्मच पिलाये जाँय।

तीसरा दिन—तीसरे दिन तीन-तीन घण्टे बाद बालक को काफी दूध पिलाया जाय ताकि वह भूखा न रहे।

फिर बालक को स्तनों से लगाएँ। दूध उतरने लगेगा। यह आजमाया हुआ नुसखा है। —सम्पादक

पहला डेढ़ माह—नियमित रूप से तीन-तीन घण्टे के बाद नीचे लिखे समय के अनुसार पिलाना चाहिये।

सुबह—छः बजे और नौ बजे।

दोपहर और उसके बाद—बारह बजे और तीन बजे।

शाम को—छः बजे और फिर रात को दस बजे।

डेढ़ माह के बाद—अब चार-चार घण्टे बाद दूध पिला चाहिये। प्रातः छः बजे और दस बजे, दोपहर बाद दो बजे, शाम को छः बजे और रात को दस बजे। रात के दस बजे से लेकर प्रातः छः बजे तक दूध बिलकुल न पिलाया जाय। अगर बालक किसी तरह रात को उठ कर रोने लगता हो, या जाग जाता हो, तो उसे सन्तुष्ट करने के लिये या अपने आराम की खातिर उसे दूध नहीं पिलाना चाहिये। अगर बालक को और कोई तकलीफ़ नहीं है दो चार चम्मच गुनगुने पानी के बोतल में डाल कर पिला दें। बालक सो जायगा। लेकिन अगर बालक का वजन बहुत ही कम है, या बीमार है, या किसी कारण से माँ से कुछ समय के लिये अलग रहा है, तो उसे रात के समय दूध पिलाया जा सकता है। बालक का दूध केवल एक ही उबाल का होना चाहिये।

एक वर्ष तक दूध ही बालक के लिये पूर्ण खुराक है। लेकिन इसी समय उसे वे चीजें खिलाने का कुछ अभ्यास कराना चाहिये जो उसे आगे चल कर खानी हैं। पहले छः महीने में दूध और पानी के सिवा और किसी चीज की आवश्यकता नहीं। इसके बाद बालक के मसूड़े मजबूत हो जाते हैं, और दाँत निकलते समय कठिनाई नहीं होती। फिर धीरे-धीरे सब्जी की तरी देना शुरू कर सकते हैं। तरी में नमक के सिवा और कुछ न डाला जाय। सन्तरे का रस भी लाभदायक है। लेकिन रस देने से अगर बालक की टट्टी का रंग हरा हो जाय तो रस

देना बन्द कर देना चाहिये। माता का दूध पीने वाले बालक को पहले महीनों में रस की आवश्यकता नहीं होती। लेकिन बोतल का दूध पीने वाले बालक को डेढ़ माह बाद चीनी मिला सन्तरे का रस देना शुरू किया जा सकता है।

हर अवस्था में बच्चे को उबाला हुआ पानी काफी मिलना चाहिये। शुरू में पानी बोतल में डाल कर देना चाहिये ताकि दूध छुड़ाने* तक

---

*दूध छुड़ाने का सब से अच्छा समय नवां या दसवां महीना है। दूध अधिक से अधिक एक साल तक पिलाया जा सकता है। लेकिन यह ध्यान रहे कि एकदम जल्दबाजी से दूध छुड़ाने में बालक को कल्पनातीत हानि पहुंचती है। उसके चरित्र में कितने ही दोष घुस जाते हैं, जो जीवनभर उसका पीछा नहीं छोड़ते। माता के स्तन से दूध पीना बालक की सब से बड़ी खुशी है। इस खुशी से वञ्चित होना बालक के लिये जबरदस्त कुरबानी है। इसलिये दूध छुड़ाते समय माँ को बड़ी सावधानी से काम लेना चाहिये। दूध छुड़ाने के दो-तीन महीने पहले से ही एक समय का दूध बन्द करके एक बार बोतल का दूध पिलाना चाहिये, या टमाटर अथवा सन्तरे आदि का रस देना चाहिये। बालक को जो चीज पसन्द हो, वही देनी चाहिये। इसके अलावा बालक को किसी न किसी प्रवृत्ति में लगाये रखना चाहिये। ऐसा करने से दूध छोड़ते समय बालक को कोई दिक्कत न होगी। कुछ माताएँ अपने बालक को तीन-तीन चार-चार साल तक अपना दूध पिलाती रहती हैं। इससे बालक के विकास में बहुत बाधा पड़ती है। वह पराधीन हो जाता है। दुनियां से बड़ी-बड़ी आशाएँ बांध लेता है। रुपया पानी की तरह लुटाने लगता है। —सम्पादक

उसे बोतल का अभ्यास हो जाय। क्योंकि बाद में दूध बोतल से ही पीना होगा।

बालक को चिकनाई की भी आवश्यकता है। इसके लिये मक्खन सब से अच्छा है। यदि छोटी उम्र से ही अभ्यास कराया जाय तो मक्खन की छोटी सी गोली बालक निगल सकता है।

मांस बढ़ाने वाली खुराकों में बालक के लिये दूध अव्वल नम्बर की, अण्डा दूसरे नम्बर की, मछली तीसरे नम्बर की और मांस चौथे नम्बर की खुराक है।

घर में बालक का स्थान ?

रोज रसोई किस से पूछ कर बनाई जाती है ? कितनी माताएँ ऐसी हैं, जो रसोई बनाते समय बालक की रुचि-अरुचि का खयाल रखती हों, सोचती हों कि बालक को कौन चीज रुचेगी ? कौन चीज हजम होगी ?

जब बालक को कोई चीज अच्छी नहीं लगती, हम तुरन्त कह उठते हैं, "यह खाना क्या जाने ? इसे स्वाद का कोई खयाल हो तब न ?"

जब तीखी या चरपरी चीज खाने से बालक इन्कार करता है, हम चट से कह चलते हैं, "वाह तीखा खाने की आदत तो डालनी ही चाहिये।"

अगर हमें खारी या खट्टी चीजें अच्छी लगती हैं, तो हम बालक के सामने खारी-खट्टी की हिमायत करते हैं, दाल-भात रुचता है, तो दाल-भात की, और साग-सब्जी रुचती है, तो साग-सब्जी की हिमायत करते हैं।

चूंकि बालक हमसे कद में और डील-डौल में छोटे हैं, उन्हें हमारी एक आज्ञा का पालन करना ही चाहिये। लेकिन इससे भी हमें सन्तोष हो तब न ? हम चाहते तो यह हैं कि बालक हमारी-सी आदतों वाला, हमारे से शौकों वाला और हमारे जैसी रुचि-अरुचि वाला बने।

उसे चाहिये कि वह हमारी तरह बैठना सीखे, हमारी तरह बोलना-बतलाना सीखे, हमारी तरह खाना-खिलाना सीखे ! अगर वह यह सब नहीं करता है, तो हमारी समझ में वह निकम्मा है, नालायक है ।

हम चाहते हैं कि जैसे हम हैं, हमारे बालक भी वैसे ही बनें । हम खुद अपनी तरफ से यह फैसला दे चुके हैं, कि बालकों के लिये हमारा आदर्श पर्याप्त है । हममें कितने हैं, जो समझते हों कि बालक हमसे भी ऊँची वृत्ति और शक्ति के बन सकते हैं ?

क्या हम जानते हैं कि अपने पूर्व पुरुषों की अपेक्षा हम किन-किन बातों में आगे बढ़े हैं ? क्या हम अपनी इस उन्नति के पूरे इतिहास से परिचित हैं ?

दुनियां आगे बढ़ रही है या पीछे हट रही है ?

बालकों के विचारों का हम अपने दिल में कितना खयाल रखते हैं ? अगर बालक विलायती के बदले देसी कपड़े पहनना चाहता हो तो क्या हमारा अर्थ-शास्त्र उसमें बाधक नहीं होता ? क्या बालक के लिये हम अपनी स्वार्थपूर्ण दृष्टि को भुला सकते हैं ? क्या यह सच नहीं है कि हम बालक को भी नवयुग की नई कल्पनाओं से बचाना चाहते हैं ? क्या कभी हम चाहते हैं कि वह उनसे अनुप्राणित हो ?

कई बालकों को सिर पर टोपी रखना या पैर में जूते पहनना अच्छा नहीं लगता, लेकिन उनके इस तरह नंगे सिर और नंगे पैर घूमने से घर के बड़े बूढ़ों की बेइज्जती जो होती है ?

कुर्ते या कमीज की जेब भी जहां बाबूजी चाहेंगे, वहीं न लगेगी । इसमें भी बालक की सहूलियत का खयाल कोई क्यों रखने लगा ?

लड़की की घाघरी और पोलके का रंग ढंग भी तो माँ ही पसन्द करती है न ? कोई मानता है कि बालक में खुद भी पसन्द करने की शक्ति है ? बचपन में हमें कौन कुछ पसन्द करने देता था ? हम

बचपन में गुलाम रहे, तो अब हमारे बालकों को भी तो उस गुलामी का कुछ प्रायश्चित करना चाहिये न ?

किस समय और किस दिन बालकों को कैसे कपड़े पहनने चाहिये, इसका निर्णय भी तो अनुभवी माता ही न करती है। जो माँ को अच्छा लगता है, सो सबको अच्छा लगता है। अगर बालक किसी जुलूस या सभा के लायक कपड़े न पहने, तो उसमें बदनामी माँ की ही न होगी ? नन्हें बालक की बदनामी क्या और बेइज्जती क्या ?

बालक माता-पिता की प्रतिष्ठा को सुरक्षित रखने के साधन जो ठहरे ! बालक और हैं भी क्या ? माता-पिता की दम्भ और अभिमान-वृत्ति को सन्तुष्ट रखने के साधन ही न ?

बूढी मां जिन चीजों को खुद नहीं पहन सकती, उन्हें बालकों पर लाद कर खुश होती है। जब मां उदास या गमगीन हो, तभी बालकों को मौज करना चाहिये न ?

बालक तो आखिर नन्हें और निकम्मे ही न हैं ! उन्हें रंग की परख क्या। कला की कद्र और पहचान क्या ? सौन्दर्य से उन्हें वास्ता क्या ? वे तो मां बाप की बड़ी-बड़ी गुड़िया हैं। माँ-बाप अपनी इच्छानुसार उन्हें सँवारेंगे और सजायेंगे। उन्हें देख कर खुश होंगे। खेलायेंगे और खिलायेंगे और यह सब भी तो कुछ बहुत अच्छे माने जाने वाले माता-पिता के चंद बालकों को ही न नसीब होगा।

बालक चाहते हैं कि वे नंगे बदन खेलें। लेकिन फिर शिष्टाचार का क्या होगा ? पहिले मां-बाप खुद शिष्टाचार की गुलामी से मुक्त होंगे, तभी न वे उससे बालकों को मुक्त रख सकेंगे।

पसीना चाहे चू रहा हो, कपड़े तो पहनने ही होंगे। बदन चाहे चारों ओर से जकड़ जाये, खुल कर खेलना-कूदना चाहे कठिन हो जाय, पर कपड़े तो पहनने ही होंगे। बिना कपड़ों के बालक कितना

भद्दा लगता है। उसके सहज सुन्दर शरीर को जब तक हम बनावटी कपड़ों से ढक नहीं देते, हमें कल नहीं पड़ती। हमारी कला-रसिकता का दिवाला नहीं पिटता। लेकिन बालक आखिर है तो सामाजिक प्राणी। उसे समाज के सब नियम तो जान ही लेने चाहिये न। वह बचपन से कपड़े पहनना न सीखे, और फिर बड़ा होकर नंगा भटके ता ?

बालक कुदरत का खिलौना है। खुली हवा और सुबह के सूरज की धूप उसके प्यारे दोस्त हैं। पृथ्वी की गोद, मां की प्यारी गोद से भी उसे अधिक प्रिय है। पृथ्वी ता उसकी मां की मां है न?

लेकिन बालक को खुली हवा में जाने दिया जायगा तो उसे जुकाम न हो जायगा ! सूरज की धूप में फिरने से उसे बुखार न आ जायगा ! और जमीन पर लोटने से कपड़े गन्दे न होंगे ! बदन गन्दा न होगा ! अपनी इस मान्यता को हम कभी भूल सकते हैं ?

सौने से बिछौना खराब होता है, इसलिये बिछौने पर सोना नहीं, खेलने से कपड़े गन्दे होते हैं, इसलिये खेलना नहीं ! यह हमारा न्याय है !

हमारे लिये एक कायदा, बालकों के लिये बिलकुल दूसरा कायदा। लेकिन कभी किसी ने बालक से पूछा भी है—"लल्ला ! तुम खेलना चाहते हो या कपड़े सम्भालना ?"

कैसा मुँहतोड़ जवाब मिलेगा, किसी ने सोचा है।

कुदरत की सोहबत से बालक में नई जिन्दगी पैदा होती है। किसी ने कभी खयाल किया है कि पृथ्वी के स्पर्श से बालक को कितनी खुशी, कितना आनन्द होता है।

जब बालक आपके आगे-आगे दौड़ेगा और आप उसके पीछे-पीछे

चलेंगे, तभी आप समझेंगे कि खुल कर खेलना बालक को कितना पसन्द है।

कोई जानता है कि बालक के विचार में सारी सृष्टि, सारा जीवन, कितना चमत्कारिक, कितना अद्भुत और कितना अजीब है ?

पृथ्वी की निर्मल धूल बालक को हमारे चन्दन से भी ज्यादा प्यारी है। हवा की हलकी, मीठी तरंगें उसे हमारे विकारी चुम्बनों से कहीं प्रिय हैं। बाल सूर्य की कोमल किरणें उसे हमारे खुरदरे होठों से कहीं मुलायम होती हैं। जहां हमें कुछ भी नहीं दिखाई देता, वहीं बालक चमत्कार देखता है। नन्हीं-सी तितली को देख कर बालक पागल-पागल हो उठता है। पतिंगों को देख कर वह खुद पतिंगा सा बन जाता है। मेंढकों को देख कर वह मेंढक की तरह कूदने लगता है। घोड़ों को देख कर वह हिनहिनाता और गाय को देख कर गाय की तरह रँभाने या डकारने लगता है।

घास का नन्हा-सा तिनका भी बालक की दृष्टि में एक महान् संग्रह योग्य पदार्थ है।

अगर आप उसकी जेब टटोलेंगे, तो उसमें आपको घास के तिनकों और फूलों और पत्तियों के ढेर मिलेंगे।

प्रकृति में स्नान किये बिना बालक प्रकृति के रहस्यों को क्योंकर बूझ सकेगा!

चाँद की चाँदनी, नन्हीं-सी कलकल बहती नदी, खेतों की धूल, बाड़ी के बीच बनी झोंपड़ी, पहाड़ियों के कङ्कर, खुले मैदान और आसमान की रंग-बिरंगी शोभा, ये सभी बालक को प्रकृति की ओर से प्राप्त उपहार हैं।

इन सब का स्वतन्त्रता पूर्वक उपयोग करने से हम बालक को क्यों रोकें। यदि बालकों को खुले आसमान के नीचे, उन्मुक्त प्रकृति के बीच,

रात-दिन रहने दिया जाय, तो वे कभी घर में आने का नाम भी न लें। फूल तो बालकों के जिगरी दोस्त हैं। उन्हें देख कर वे नाच उठते हैं। दूर से फूलों की महक पाकर उनके नथुने फड़क उठते हैं, चेहरा दमक उठता है, दाँतों की कलियां खिल उठती हैं, और गालों पर दो नन्हें-नन्हें गड्ढे से दिखाई देने लगते हैं।

बालक फूलों पर मुग्ध रहता है और बालक माता पर मुग्ध। बालक पहले प्रकृति के माधुर्य को समझता है, बाद में वह माता-पिता के माधुर्य को समझ पाता है।

जब बालक धूल में लोट कर ऊपर आसमान की ओर एकटक देखता है, तो कहिये वह क्या करता है।

वह समग्र प्रकृति को पीता नजर आता है। सारी सृष्टि को अपने स्नेह से भरता पाया जाता है।

चाँद उसे रोज-रोज नया-नया आनन्द दे जाता है।

चाँद रात ही में दिखाई पड़ता है। बालक सोचता है—यह चाँद दिन में कहां छिप जाता होगा! लुका-छिपी का खेल बालकों ने कहीं चाँद ही से तो न सीखा हो।

हम, आप 'घी चुपड़ी रोटी' का जो चाहें, अर्थ करें, पर यह काम असल में लोक-साहित्य के आचार्यों का है। हम चाहे बालक को चुपाने के लिये ही इस रोटी को याद करते हों, तो भी बालक तो यही सोचता होगा कि मां उसे चाँद की रोटी नहीं, चाँद का तेज खिला रही है। चाँद की चाँदनी, उसकी शीतलता भला किसे अच्छी न लगेगी! बालक का आनन्द चाँद का रंग निरखने में, उसकी चाँदनी में नहाने में, और उसके तेज को अपनी आंखों में भरने में है।

बालक तुरन्त ही इस बात को मान लेता है कि चाँद में जो धब्बा है, वह निरा धब्बा नहीं, बल्कि कोई हरिण है, या कोई बुढ़िया बैठी

चर्खा चला रही है। यह बालक के भोलेपन का नहीं, उसके पागलपन का सबूत है। प्रकृति को देख कर वह उसमें ऐसा ही तल्लीन हो जाता है। विज्ञान की कर्कशता बालक के कोमल मस्तिष्क को नहीं सुहाती। यही वजह है कि बालकों को परियों की कहानियां* इतनी प्रिय होती हैं। अद्भुतता उनका स्वभाव है, और अद्भुतता में ही उनका आनन्द। लेकिन बालक के साथ चाँदनी में घूमने की फुरसत हमें हो, तब न! हमें चाँद पर कविता जो रचनी है। हरिण और बुढ़िया की लोक कथा के रहस्य का पता जो लगाना होता! हमें चन्द्रलोक में जीवित्त प्राणियों के रहने, न रहने की खोज जो करनी होती है!

---

* यह सही नहीं है कि विज्ञान से बालक घबराते हैं या जी चुराते हैं। बात दरअसल यह है कि परियों और जानवरों की काल्पनिक कहानियों के अलावा हम बालकों को वज्ञानिक तथा अन्य वास्तविक कहानियां कभी सुनते ही नहीं। अगर बालकों को हवाई जहाज, रेडियो, छापाखाना आदि की कहानियां रोचक ढँग से सुनाई जाँय तो वे बड़ी दिलचस्पी से इन्हें सुनेंगे। लेकिन हम तो यह मान बैठे हैं कि बालकों को परियों की कहानियों के सिवा दूसरी कहानियां पसन्द ही नहीं आतीं। जिस प्रकार बड़े अपने दिन भर के अरुचिकर काम से थकथका कर और परेशान होकर सिनेमा, नाटक आदि में जाकर अपनी थकावट और परेशानी को दूर करते हैं, उसी प्रकार तमाम दिन निठल्ले पड़े हुए बालक रात को परियों की कहानियां सुन कर अपना दिल बहलाते हैं। परियों की कहानियों से न तो बालकों का विकास होता है और न उनकी कल्पना शक्ति ही बढती है। इनसे तो उलटा बालकों का जीवन अवास्यविक बन जाता है। परियों और जानवरों की कहानियां सुनने के बाद प्रायः बालकों को यही कहते सुना है कि ये कहानियां तो झूठी हैं, इनमें खूब गप्प मारी गई है। —सम्पादक

हमें फुरसत मिले कैसे ? मनुष्य सच्चा कवि बने कैसे ? चित्रकला के चमत्कार का अनुभव उसे हो क्योंकर ?

प्रकृति का गले तक पान किये बिना मनुष्य प्रकृति का चित्रण कैसे करे ? उसका स्तुतिगान किस भांति करे ? उस पर काव्य किस भांति लिखे ? बिना खाये कभी किसी का पेट भरा है क्या ?

बालक को प्रकृति से दूर रख कर हम उसे क्या बनायेंगे ? देव या राक्षस !

मैं फिर पूछता हूँ, घर में बालक का कोई स्थान है क्या ?

मकान बनवाते समय कोई सोचता है कि उसमें बालक के लिये कितने कमरे कहां-कहां रहेंगे ।

किराये का घर लेते समय भी हम नहीं सोचते कि उसमें बालक के खेलने कूदने लायक जगह है या नहीं । मकान मालिक से हम अन्य दसों प्रश्न पूछते हैं—घर में मोरी है या नहीं, रसोईघर में उजेला रहता है या नहीं, सोने के कमरों में हवा आती है या नहीं, नहाने के लिये नल, और पेशाब पाखाने के लिये टट्टी है या नहीं, गादी-गदेलों को धूप में सुखाने के लिये ऊपर छत या चाँदनी है या नहीं आदि-आदि । लेकिन क्या कभी किसी ने अभी तक यह पूछने या जांचने की तकलीफ उठाई है कि घर में बालकों के लिये खेलने कूदने की भी जगह है या नहीं ? किराये का मकान लेते समय हमें भला अपने बालक क्यों याद आने लगे । बालकों के लिये अलग जगह कैसी । यह खयाल ही हमें तो अटपटा और नया मालूम होता है ।

इन नन्हें नन्हें बच्चों का अभी से स्वतन्त्र अधिकार, इनके लिये आज ही से इतनी खटपट ? सारा घर इन्हीं का जो है ? ये इसमें रहें, खायें पीयें और मौज करें । घर में घूमने, सर्वत्र फिरने और खेलने से इन्हें कौन रोकता है ?

लेकिन वे कहां गायें ? कहां बैठ कर बात-चीत करें कहां खेलें ? कहां दौड़ें ! कहां घूमें।

रसोईघर में जाते हैं तो मां की परेशानी बढ़ती है। उसका सारा प्रबन्ध मिट्टी हो जाता है। अगर मां देव-घर में बैठी पूजा-पाठ में लगीं है, तो उसकी पूजा में विघ्न होता है।

दीवानखाने में पिता जी या तो अखबार पढ़ते मिलते हैं, या अपने किसी मवक्किल का केस तैयार करतें होते, या किसी मरीज को देखते होते है, या गांव अथवा शहर की किसी सभा में होने वाले अपने भाषण के मुद्दे लिख रहे होते हैं। वहां बच्चों को खुल कर खेलने का मौका कोई क्यों देने लगा! ओसारे में दद्दा और जीजी बैठे अपना सबक याद कर रहे हैं। बच्चे न तो उधर जा सकते हैं, उनके आस-पास कहीं खेल कूद सकते हैं, और न गा ही सकते हैं। जहां जाते हैं, वहीं से उन्हें निराश वापिस होना पड़ता है।

अगर तकदीर से कहीं कोई एकान्त कोना भी गया, तो वहां बैठ कर बालक को काल्पनिक गुड्डों और गुड़ियों का खेल खेलकर खुश होना पड़ता है। झूठ-मूठ का बोलना पड़ता है।

कल्पनाशक्ति के विकास का यह कोई तरीका नहीं।

शिक्षक-शास्त्रियों का यह एक निरा भ्रम है।

घर में हम अपने और अपने मेहमानों के लिये मेज, कुर्सी, चटाई, जाजम वगैरा सब कुछ रखते हैं। लेकिन बालकों के लिये खासतौर पर टाट का एक बोरा भी हम कभी रखते हैं क्या!

बालक अपने दोस्तों और मुलाकातियों को कहां बैठावे। किस पर बैठावे!

क्या हम कभी यह जानने की भी कोशिश करते हैं कि नन्हें बालकों के भी अपने दोस्त होते हैं!

दोस्त तो हमारे आपके ही हो सकते हैं। नन्हें बच्चे भला दोस्ती को क्या समझें। लेकिन याद रहे कि हमारी आपकी दोस्ती मतलब की होती है, जब कि बालकों की दोस्ती निर्दोष और निःस्वार्थ! हमारे पास अपने गहने-कपड़े रखने को आलमारियां, पेटियां और सन्दूकें होती हैं। बालक अपने कङ्कर-पत्थर, सीप और शङ्ख कहां रखें। क्या उनके बटोरे हुये पंखों पींछों और गुड्डा-गुडियों वगैरा को रखने के लिये घर में कोई स्वतन्त्र जगह होती है।

हमारी किसी चीज की चोरी हो जाने पर बालक उधर कोई ध्यान नहीं देता। लेकिन अगर कोई उसके पींछों और शङ्खों सीपों को चुराले, तो बालक तिलमिला उठता है। उसका तो मानो सारा राज ही लुट जाता है। तिस पर भी उसके इस बहुमूल्य संग्रह को सुरक्षित रखने के लिये हम उसे एक पेटी या सन्दूक तक नहीं देते! कैसी अजीब बात है।

सच तो यह है कि बालक है किस गिनती में! कितने ऐसे घर हैं, जहां बालक के कद का खयाल रख कर खूंटियां गाढी जाती हों! अलगनियों और आलमारियों का बन्दोबस्त किया जाता हो! घर में सजाये हुये अच्छे-अच्छे चित्र भी इन पर छठे चौमासे ही पड़ जाती है, बच्चों की तो बात ही क्या! वे इन चित्रों को कभी देख पाते हैं, न सराह पाते हैं।

बालक के कपड़े हम टांग देते हैं। ऊपर से लोटा-गिलास हम उतार देते हैं। बड़े-बड़े वजनी तख्तपोश हम बिछा देते हैं। थाली कटोरी भी हम सजा देते हैं।

बेचारा बालक करे क्या! बड़ी-बड़ी वजनदार चीजों को वह किस प्रकार पकड़े! कैसे उठावे! जी तो उसका बहुत चाहता है, पर वह करे क्या?

प्रायः हम समझते हैं कि बालक सशक्त नहीं है, अतएव ताकत के सभी काम हमें उसके लिये कर देने चाहिये। बाल-प्रेमी माता-पिता सोचते हैं कि ऐसा करके वे अपने बालकों को बहुत सुख पहुंचाते हैं।

बालक के महत्व को समझने का दावा करने वाले कहते हैं कि बालक के लिये जो कुछ भी वे करते हैं, सो सब बाल-पूजा और बाल-सम्मान की दृष्टि से ही करते हैं। लेकिन ये सब बालक को पल-पल अपंग बनाते रहते हैं, नहीं, उसे गुमाल के गुलाम बनाते हैं। क्योंकि हम जिसके गुलाम बनते हैं, वह हमारा भी तो गुलाम बनता है!

क्या हम बालक का विश्वास करते हैं। लालटैन या चिराग जलाने देते हैं! आग सुलगाने देते हैं! उसके अपने अपने छोटे-छोटे रूमालों और कपड़ों को उसे अपने हाथों धोने देते हैं!

हम तो कह उठते हैं कि बालक से यह कुछ हो नहीं सकता। हम मानते हैं कि उसमें व्यवस्था शक्ति होती ही नहीं। लेकिन हमें आंखें हों, तब न हम बालक की इन शक्तियों को देख सकें!

अज्ञान के घोर अन्धकार ने हमें चारों ओर से घेर लिया है। क्या बालक का विश्वास करके हम कभी उसे स्वतन्त्र रूप से काम करने का अवसर देते हैं!

हम बालक के बदले खा नहीं सकते, उसके बदले चल नहीं सकते, उसके लिये खेल नहीं सकते।

लेकिन हम उसके बदले उसके बर्तन मांज देते हैं, उसे कपड़े पहना देते हैं, उसके लिये तख्तपोश बिछा देते हैं।

अगर कोई हमें हमारे लायक काम करने से इन्कार कर दे तो! हमारा सारा काम कोई हमारे लिये कर दिया करे तो! हम सेठ रहेंगे या गुलाम।

क्या ऐसा स्वामित्व हम पसन्द करेंगे!

वह स्वामित्व होगा या मृत्यु होगी !

बालक सब कुछ कर सकता है। वह छोटे-छोटे बर्तन मांज सकता है, नन्हीं झाड़ू से घर बुहार सकता है, छोटी बहन को झुला भी सकता है। लेकिन हमें यह सब सूझता कहां है !

यदि हम बालक को अपने जीवन में उचित स्थान दें, तो पृथ्वी पर स्वर्ग का राज्य स्थापित हो जाय। घर में देव क्रीड़ा करने आवें। देवों को मृत्युलोक में जन्म लेना पड़े।

स्वर्ग बालक के सुख में है। स्वर्ग बालक के स्वास्थ्य में है। स्वर्ग बालक की निर्दोष मस्ती और मुस्कान में है। स्वर्ग बालक के भोले-भाले गान-तान में है।

बालक का वातावरण

बालकों के भविष्य का निर्माण करने वाली दो विशेष शक्तियां हैं। शिक्षा-शस्त्रियों और मनोवैज्ञानिकों ने उन्हें अनेक नाम दिये हैं—प्रकृति और लालन-पालन, स्वभाव और वातावरण, वंशानुक्रम और बाह्य परिस्थिति आदि। स्वभाव (प्रकृति) अथवा इनके अन्य पर्यायवाची शब्दों से तात्पर्य उन प्रवृत्तियों और विशेषताओं से है जो कि बच्चे में उसके जन्मकाल से ही पाई जाती हैं। यह विशेषताएँ किस प्रकार माता-पिता से बालक में आ जाती हैं, यह प्राणी विज्ञान का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। वर्तमान शताब्दी में इसका बहुत ही गहरा और विशद अध्ययन हुआ है। वातावरण से तात्पर्य उस समस्त जड़ और चेतन वातावरण से है, जिसमें बच्चे का पालन-पोषण होता है। अभी तक वंश-गत नियमों में किसी प्रकार का परिवर्तन करना सम्भव नहीं हो सका है। परन्तु जहां तक वातावरण का सम्बन्ध है, यह पूर्णतया मनुष्य के अधीन है। इस सम्बन्ध में वह पूर्णतया स्वतन्त्र है। कोई उसके रास्ते में बाधा नहीं डाल सकता। उसे तो केवल अपने में और भावी मनुष्य में सामञ्जस्य स्थापित करना है।

यह दोनों शक्तियां बच्चे के जीवन को परस्पर किस अनुपात से प्रभावित करती हैं, इसका निश्चय अभी तक नहीं हो पाया है। इस

बालक पर वातावरण का प्रभाव।

हाल ही में टार्जन नाम का यह लड़का ट्रान्स जॉर्डन में मिला है। यह हिरन की तरह काम करता है, हिरन की तरह खाता है, हिरन की तरह चलता है। ऐसा मालूम होता है कि इसकी माँ ने इसे पैदा होते ही जंगल में छोड़ दिया था, और यह हिरनों को मिला, जिन्होंने इसे अपना लिया और लालन-पालन किया। इसलिये इसने सारी आदतें हिरनों की सीख लीं, और अब भी घास ही खाना चाहता है। आज-कल यह दमिश्क के हस्पताल में जाँच के लिये है।

विषय में विद्वानों में दो मत प्रचलित हैं। अनेक मनोवैज्ञानिक, सब वंश-परम्परागत संस्कारों के विषय में काफी अनुसन्धान के बाद इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि मनुष्य वास्तव में प्रकृति के हाथ का एक खिलौना है, और उन प्रवृत्तियों पर किसी भी प्रकार से नियन्त्रण नहीं किया जा सकता। परन्तु इसके विपरीत मनोवैज्ञानिकों का एक दूसरा समुदाय है, जो उतनी ही दृढ़ता से विश्वास करता है कि बच्चे के वातावरण का उचित ध्यान रखना ही पर्याप्त है, तथा उसका पालन-पोषण ही उसे अच्छा मनुष्य बनाने में सहायक होता है। यदि बच्चे का विधि पूर्वक पालन किया जाय तो उसकी उन्नति अवश्यम्भावी है, और वंश-परम्परा की कोई शक्ति उसमें बाधा नहीं डाल सकती। कुछ भी हो, इतना तो निश्चित है कि बच्चे के माता पिता अथवा शिक्षक उसकी वंशगत विशेषताओं में कुछ विशेष हस्तक्षेप नहीं कर सकते। अतएव उनके लिये तो बच्चे का वातावरण मुख्य है।

बच्चे की उन्नति द्विमुखी होती है। अतएव वातावरण का उद्देश्य भी दुहरा होना चाहिये—शारीरिक और मानसिक उन्नति। परन्तु इसके पूर्व कि हम बच्चे के लिये आवश्यक वातावरण के प्रश्न पर विचार कर सकें, हमें यह न भूलना चाहिये कि वातावरण सदैव बच्चे की आवश्यकताओं के अनुकूल होना चाहिये। इसलिये पहले बच्चे की विशेषाएँ जान लेने के बाद उनके अनुसार ही उसकी आवश्यकताओं पर विचार करना चाहिये। बच्चा एक विकासशील प्राणी है। उसके अन्दर बेहद शक्ति है, जिसके बिना वह उतनी अधिक उन्नति नहीं कर सकता, जो बचपन में आवश्यक है। उदाहरण के लिये अपने प्रथम वर्ष में बच्चा जितनी सर्वतोमुखी उन्नति करता है, वह एक ऐसी घटना है, जो उसके बाद के जीवन में नहीं पाई जाती।

घोर अन्धकार से निकल कर बच्चा इस संसार में आता है—रुग्ण

और कमजोर अवस्था में। उस समय उसे किसी प्रकार का ज्ञान नहीं होता, तथा सब प्रकार से वह एक अत्यन्त दयनीय स्थिति में होता है। परन्तु एक वर्ष में ही वह बैठना, खड़ा होना तथा चलना-फिरना सीख जाता है। इतना ही नहीं, वह उन मनुष्यों और पदार्थों को पहचानने भी लगता है, जो उनके पास में रहते हैं। छोटा सा बच्चा व्यवस्था को पसन्द तथा अव्यवस्था को नापसन्द करने लगता है, और अपनी दृढ़ता भी दिखाने लगता है। इतने थोड़े समय में इतनी अधिक उन्नति होना कोई साधारण बात नहीं है। हमको इस ओर पूर्ण ध्यान देना चाहिये, तथा उसके लिये वातावरण प्रस्तुत करते समय यह विशेष रूप से देख लेना चाहिये कि यह उसकी उन्नति में पूर्ण सहायता पहुंचाता है या नहीं।

बच्चे की दूसरी प्रमुख विशेषता पुनरावर्तन है। इसका सम्बन्ध भी पूर्वोक्त बात से ही है। बच्चे का क्षेत्र बहुत सीमित है, क्योंकि संसार और संसार के पदार्थों के बारे में उसका ज्ञान अभी बहुत थोड़ा होता है, परन्तु उसकी शक्ति अपरिमित है। डाक्टर मांटीसोरी ने बालक की इस प्रकृति के सम्बन्ध में अनेकों उदाहरण दिये हैं, तथा बच्चों के लिये उन्होंने जो साधन बनाये हैं, उनकी उपयोगिता भी अच्छी तरह सिद्ध की है। लेकिन हम यह नहीं मानते कि मांटीसोरी के ये साधन इस विषय में आखरी वस्तु हैं तथा अब इस विषय में उन्नति के लिये और अवकाश ही नहीं। पर इतना हम अवश्य महसूस करते हैं कि यह वास्तविक दिशा में किया गया एक प्रयत्न है।

बच्चे के लिये उपयुक्त वातावरण प्रस्तुत करते समय एक और बात का ध्यान रखना चाहिये। बालक अपने ज्ञान की प्राप्ति और वृद्धि सदा अनुकरण द्वारा करता है। अतएव बच्चों से व्यवहार करते समय हमारा सिद्धान्त उपदेश देना न होना चाहिये, वरन स्वयं अपने कार्यों

द्वारा वह उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिये। यदि हम चाहते हैं कि हमारा बच्चा विनयशील हो, तो हमको भी विनयशील होना चाहिये, यदि हम उसे सत्यप्रिय बनाना चाहते हैं, तो हमें सत्यप्रिय होना पड़ेगा, यदि हम उसमें वीरता के लक्षण देखना चाहते हैं तो हमें वीर होना चाहिये। किसी भी प्रकार की जबरदस्ती अथवा उकसाहट, दण्ड का भय या इनाम का लालच, उपदेश अथवा ताड़नाएँ बच्चे को वैसा नहीं बना सकतीं, जैसा हम बनाना चाहते हैं। हमने देखा है कि शिक्षक स्वयं तो स्कूल में लेट आते हैं, किन्तु लड़कों से समय पर आने की आशा करते हैं। यह कितने आश्चर्य की बात है!

ऊपर लिखी बातों के अतिरिक्त एक और बात है जो बच्चे के वातावरण से घनिष्ठ सम्बन्ध रखती है! यह बच्चे का व्यवस्था प्रेम है। बाल्य-जीवन की यह वक ऐसी विशेषता है, जिस पर यथोचित ध्यान नहीं दिया जाता। डा० मांटोसोरी ने इस विशेषता* का उदाहरण देते हुये एक विचित्र घटना का उल्लेख किया है। एक दो वर्ष का बच्चा बहुत जोर से रो रहा था। बच्चे को चुप करने के समस्त साधन बेकार गये और किसी भी प्रकार कोई उसके रोने का कारण न जान सका। बाद में एक मेज पर रखो हुई एक छतरी वहां से हटाते ही बच्चा तत्काल चुप होगया। बात यह थी कि बच्चा मेज पर रखी हुई उस छतरी के दृश्य को देख नही सकता था, क्योंकि छतरी वहां पहले कभी नहीं रखी गई थी।

---

* बालक की एक और बड़ी विशेषता है—स्वातन्त्र्य। जन्म से ही बालक स्वतन्त्रता प्रिय होता है। स्वतन्त्रता बालक का प्राण है। स्वतन्त्र वातावरण जादु का असर रखता है। लन्दन के प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री मि० ए० एस० नील के स्कूल में प्राय: जटिल प्रकृति के बालक ही दाखिल होते हैं। शुरू-शुरू में ये बालक बड़ा ऊधम मचाते हैं,

बालक दो प्रकार का हो सकता है—व्यक्तिगत और पदार्थगत। यदि बच्चे के पास रहने वाले व्यक्ति बालमनोविज्ञान को जानते हैं, तो उनका व्यवहार ऐसा होगा जो बच्चे की उन्नति में सहायक हो। जैसा क डा० मांटीसोरी ने कहा है कि गुलामी की प्रथा का अन्त होने के बाद मनुष्य जाति के सबसे बड़े अपराध बच्चों के प्रति हुये हैं। और मजा यह है कि फिर भी शिक्षक और माता-पिता सदा बच्चे के प्रति अपने पूर्ण प्रेम दावा करते हैं। हमें उनके प्रेम में सन्देह नहीं है, परन्तु अज्ञान के कारण बच्चों के रक्षक ही उनके कट्टर शत्रु बन जाते हैं। यहां पर एक उदाहरण देना उचित होगा। यदि कोई माता-पिता आपस में सदैव झगड़ते रहते हैं,—तब वे यह आशा किस प्रकार कर सकते हैं कि उनका बच्चा शान्त एवं मृदुल स्वभाव का होगा। बड़ों को चाहिये कि बच्चों के सामने पूर्ण आदर्श उपस्थित करें। बच्चे को केवल यह मत करो, वह मत करो आदि आज्ञाएँ देने से कोई लाभ न होगा। अपने को पूर्ण और बड़े मान कर जबरदस्ती बच्चे पर अपनी इच्छाएँ थोपना सर्वथा अनुचित होगा। बड़ों का यह अहम्भाव ही

तोड़-फोड़ करते हैं, जरा पढ़ कर नहीं देते, शिक्षकों को बड़ा तंग करते हैं। लेकिन धीरे-धीरे स्वतन्त्र वातावरण के प्रभाव से प्रायः सभी बालक सुधर जाते हैं। झूंठ बोलना, चोरी करना, गाली देना आदि दुर्गुणों को बिना किसी के कहे सुने, खुद-बखुद छोड़ देते हैं। मि० होमरलेन के बाल-सुधार-गृह में भी ऐसा ही होता था। सुधार-गृह के स्वतन्त्र वातावरण में रहते-रहते अपराधी बालक अपराध करना छोड़ देते थे। रूस में आजकल यही हो रहा है। सचमुच स्वतन्त्र वातावरण में शैतान भी फरिश्ता बन जाता है। इसके विपरीत दुषित वातावरण में फरिश्ते के भी शैतान बन जाने की सम्भावना है। —सम्पादक

बच्चों का सबसे बड़ा शत्रु है। इसी समस्या का एक दूसरा पहलू है, जिसे हम एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करेंगे। एक स्कूल जाने लायक अवस्था वाला बच्चा अपनी पेसिन्ल एक चाकू से बनाना चाहता है, परन्तु उसकी मां तत्काल ही दौड़ कर चाकू उसके हाथ से छीन लेती है, और इस डर से कि कहीं चाकू उसके हाथ में न लग जाय, स्वयं पेंसिल बनाने लगती है। बच्चे को यह बहुत नागवार मालूम होता है, तथा कभी-कभी वह अपने न्यायपूर्ण कार्य में इस हस्तक्षेप के विरुद्ध विद्रोह तक कर बैठता है। परन्तु बहुधा उसे अपनी कठोर माताशाही का शासन स्वीकार करना पड़ता है। क्या उस माता को मालूम है कि उसने अपने बालक को कितनी बड़ी हानि पहुंचाई है। उसने बालक की स्वतन्त्रता में बाधा डाल कर उनकी उन्नति के मार्ग में सबसे बडी रुकावट पैदा की है। वास्तव में उसने अनजान में ही अपने सपनों की दुनियां के राजा का सबसे अधिक अपकार किया है। बड़ा आदमी बच्चे के वातावरण का ही एक अंग है, तथा यह उसका पवित्र कर्तव्य है कि वह किसी प्रकार बच्चे की उन्नति में बाधक न हो। शिक्षक हो या माता- केवल बालमनोविज्ञान और बाल स्वभाव का अध्ययन ही उसके लिये पर्याप्त नहीं है। उसे तो उस वातावरण के साथ अपना मेल बैठाता है, जिसे वह बच्चो के लिये आवश्यक सतझता है। वास्तव में उसे बच्चो के साथ स्वयं भी बच्चा बनना पड़ेगा। जो बड़े आदमी बालक के पास रहते हैं, उन्हें तृष्णा, घमण्ड, क्रोध, आलस्य एवं सबसे अधिक अहंकार को पूर्णयया त्याग देना चाहिये, जिससे वे बालक के लिये आदर्श वातावरण उपस्थित कर सकें। बड़े आदमी का पार्ट वस्तुतः एक दर्शक का सा होना चाहिये। बालकों के अन्दर हठ एवं उपद्रव की आदतें तभी आती हैं, जब बड़ा व्यक्ति अपने इस पार्ट को भूल जाता है, तथा अपने आपको डिक्टेटर समझने लगता है।

बालक की उन्नति में पदार्थगत वातावरण का उतना ही महत्व है, जितना व्यक्तियों का। पदार्थगत वातावरण से तात्पर्य उन सभी वस्तुओं से है, जिनके बीच में बालक रहता है, तथा जिन्हें वह अपने खेल के लिये व्यवहार में लाता है। बालक के व्यक्तित्व के विकास के लिये मकान काफी खुला, हवादार और साफ-सुथरा होना चाहिये तथा उसमें बालक के खेलने के लिये पर्याप्त जगह भी होनी चाहिये। पदार्थगत वातावरण में बालक का भोजन भी आ जाता है। बालक की शारीरिक और मानसिक उन्नति के लिये उसके भोजन का सन्तुलित होना आवश्यक है। उसे अपनी आवश्यकता से न तो अधिक और न कम मिलना चाहिये। बालक के कपड़े* भी उसकी द्विमुखी उन्नति पर बहुत अधिक प्रभाव डालते हैं।

पदार्थगत वातावरण का सबसे महत्वपूर्ण अंग वह वस्तुएँ अथवा साधन हैं जो शिक्षा-शास्त्रियों अथवा माता-पिता ने अपने बालकों के उपयोग के लिये बनाये हैं। इनमें खिलौने, मिकानो, पहेलियां, किंडरगार्टन की वस्तुएँ, माटीसोरी के साधन, चित्रकला की पुस्तकें, मिट्टी

---

* बालक रंगीन कपड़े अधिक पसन्द करते हैं। माता-पिता को चाहिये कि अपनी इच्छा और रुचि के अनुसार कपड़े न बनवा कर बालकों की इच्छा और पसन्द के अनुसार ऐसे कपड़े बनवाएँ, जिन्हें बालक आसानी से पहन और उतार सकें। भोजन की तरह कपड़े भी बालक को आवश्यकता से अधिक नहीं देने चाहिये। सर्दी आदि के भय से हम बालक के शरीर पर इतने कपड़े लाद देते हैं कि वह बेचारा न तो आजादी से चल-फिर सकता है, न खेल कूद सकता है, और न कोई प्रवृत्ति ही ठीक ढंग से कर सकता है। इस प्रकार अधिक कपड़े बालक के विकास में बाधक बन जाते हैं। —सम्पादक
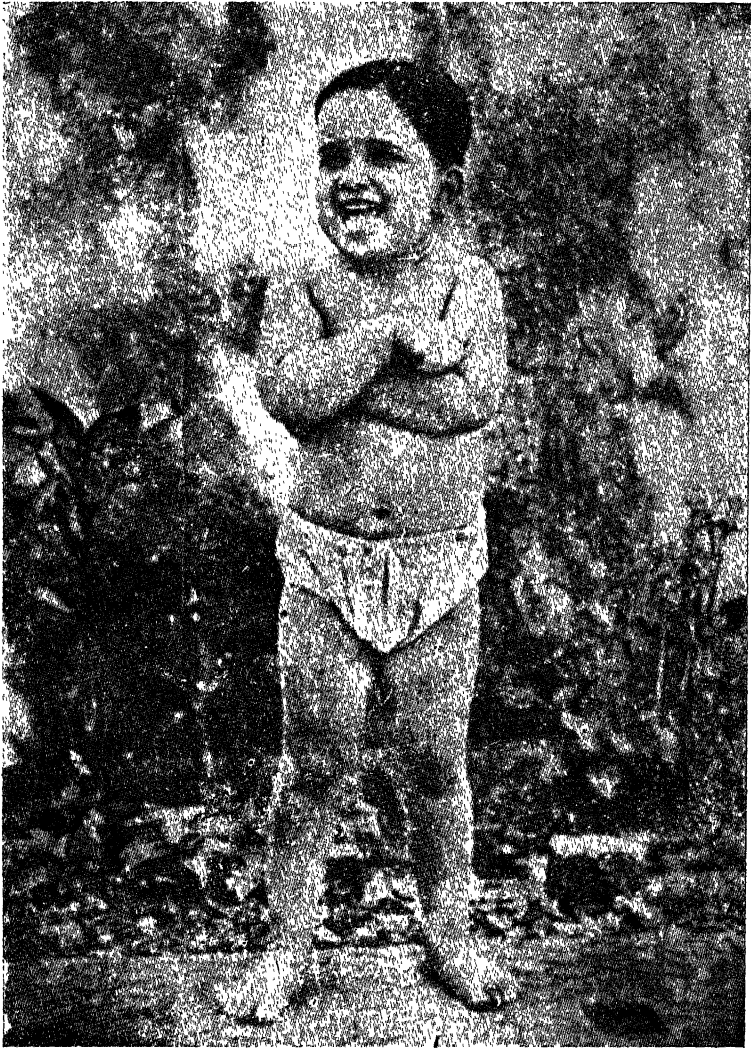
शुद्ध वातावरण में रहने वाला बालक।

की मूर्तियां तथा विशेषतया बालकों के लिये लिखी गई पुस्तकें व पत्रि-काएँ इत्यादि सम्मिलित हैं। अवस्था, देश, काल तथा परिस्थिति के अनुसार ये साधन भी भिन्न-भिन्न होने चाहिये। प्रत्येक घर में छोटे बालकों के लिये अलहदा स्थान होना चाहिये, और जो पढ़ सकते हों, उनके लिये पुस्तकालय भी अवश्य होना चाहिये, चाहे वह छोटा ही क्यों न हो। प्रत्येक माता पिता का कर्तव्य है कि वह अपने बालकों को खेल कूद में भाग लेने के लिये प्रोत्साहित करें। यह कोई असम्भव आदर्श नहीं है, और न यह निरा स्वप्न ही है। यह तो एक अत्यन्त ही व्यवहारिक योजना है। यदि राज्य अपने बालकों का अधिक ध्यान रखने लगे तथा माता-पिता और शिक्षक बालक की उन्नति के लिये अधिकाधिक प्रयत्न करने लगें तो कोई कारण नहीं है कि हम शीघ्र ही अपने उद्देश्य में सफल न हों।

स्वातन्त्र्य और स्वयं स्फूर्ति

'मोन्टीसोरी' शब्द का उच्चारण करते ही यदि कोई विचार हमारे मन में जाग्रत होता है, तो वह 'स्वातन्त्र्य' और 'स्वयं स्फूर्ति' का विचार है।

मैडम मेरिया मोन्टीसोरी स्वयं ब्रह्मचारिणी हैं, और इस कारण स्वभावतः वह स्वयं किसी एक भी बालक की मां नहीं है, फिर भी बालकों के लिये उनके मन में अधिक से अधिक कोमल भावों ने जन्म लिया और बाल-प्रेम की अधिक से अधिक सच्ची कल्पना भी उन्हीं ने संसार के सम्मुख उपस्थित की। बालक के सम्मान का, उसे एक स्वतन्त्र व्यक्ति समझ कर उसका आदर करने का पैगाम उन्हीं ने दुनियां भर में फैलाया है। 'बालक की स्वतन्त्रता'—जैसे विचित्र प्रतीत होने वाले शब्द का प्रयोग भी सब से पहले उन्होंने ही किया और अपनी शाला में उसका क्रियात्मक व्यवहार भी किया।

अब यक लोग यही समझते थे कि बालक छोटा है, उसकी समझ कच्ची है, वह कभी स्वतन्त्र नही हो सकता। उसे तो सिद्ध कर दिया है कि व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के जो सब नियम बड़ी उम्र वालों के लिये हैं, वे बालक के लिये भी उतने ही सच हैं! बालक आज्ञापालक हो सकता है, ऊपरी दबाव या बाहरी डर से नहीं, बल्कि अन्तःकरण की स्वतन्त्र

स्फूर्ति से, अपने पर प्राप्त काबू से, अपनी स्वेच्छा से। यह बहुत ही आवश्यक है कि बालक अनियन्त्रित, अव्यवस्थित और उछृंखल स्थिति से अपने ही प्रयत्नों द्वारा नियन्त्रित, व्यवस्थित और स्वाधीन बने। जो व्यवस्था और नियमन जबर्दस्ती पलवाये जाते हैं, वे बालक को कभी सच्चे अर्थ में व्यवस्थित और नियन्त्रित नहीं बना सकते। यही कारण है कि बाहरी दबाव के हटते ही बालक अव्यवस्थित और उच्छृंखल बन जाता है। डा० मोन्टीसोरी ने ये सब बातें केवल कह कर ही नहीं, करके भी बता दी हैं।

यहां इस सब की विस्तार से चर्चा करना आवश्यक नहीं है। हमें तो केवल इतनी बात ध्यान में रखनी है कि घर में बालकों से काम लेते समय पग-पग पर उनकी स्वतन्त्रता का प्रश्न हमारे सम्मुख उपस्थित होगा। हम यह न भूलें कि बालक की कोई भी सत्प्रवृत्ति उसके विकास की पोषक होती है। इसलिये हमें उसमें बाधा नहीं डालनी चाहिये, उसे वह काम स्वतन्त्रता पूर्वक करने देना चाहिये। यदि बालक की किसी प्रवृत्ति से दूसरे के काम में बाधा पहुंचती हो, तो हम बालक के लिये दूसरे स्थान या समय की व्यवस्था कर दें, पर उसकी प्रवृत्ति को कभी न रोकें।

हमारे लिये दूसरी विचारणीय बात हमारे 'हां' और 'नहीं' की है। हमारी 'हां' और हमारे 'नहीं' में बालक की स्वतन्त्रता और परतन्त्रता समाई हुई है। अपनी एक 'नहीं' से हम उसे गुलाम बना सकते हैं, और हमारी एक ही 'हां' उसे उड़ने के लिये पंख दे सकती है। इसके लिये हमें एक साधारण नियम सदा ध्यान में रखना चाहिये, और वह यह कि जब तक हम 'हां' कह सकते हैं, तब तक 'नहीं' कदापि न करें। एक बहन मुझसे कहती थीं कि आम तौर पर लोगों की यह आदत सी होती है कि पहले-पहल वह 'नहीं' ही कहते हैं। लेकिन जब

देखते हैं कि बालक अपनी हठ नहीं छोड़ रहा है, तो 'हां' कह देते हैं। बालक के यह पूछने पर कि 'मैं घूमने जाऊं ?' जो लोग पहले 'ना' कहते हैं और फिर उसके बहुत रोने और गिड़गिड़ाने पर उसे जाने देते हैं, वे निर्बल और अत्याचारी हैं, स्वतन्त्रता के उपासक सच्चे शासक नहीं। जब हम एक बार यथा-सम्भव हां कहने का नियम बना लेते हैं, तो नहीं कहने का विवेक हमें बिना क़ठिनाई के प्राप्त हो जाता है, और बालक की स्वतन्त्रता की सीमा भी निश्चित हो जाती है।

बालक को उसके व्यक्तिगत विकास के लिये, उसे स्वाधीन बनाने के लिये, आवश्यक स्वतन्त्रता देनी ही चाहिये, लेकिन यदि वह दूसरों के लिये बाधक बन रहा हो, (जैसे किसी को मार रहा हो, या किसी की कोई चीज छीन रहा हो), तो उसे तुरन्त रोकना चाहिये। इसके लिये वह स्वतन्त्र है ही नहीं। स्वतन्त्रता का अर्थ है, निज का तन्त्र रखने वाला, निज के अधीन रह कर अपना तन्त्र चलाने वाला, निज के साथ दूसरों का भी सम्मान करने वाला।

फिर बालक की स्वतन्त्रता से मतलब है, उसके घूमने फिरने की स्वतन्त्रता, क्रिया करके अपने स्नायुओं पर काबू पाने की स्वतन्त्रता, फिर उसी क्रिया को करके उसका अभ्यास बढ़ाने की स्वतन्त्रता। यदि हमारा घर छोटा हुआ, तो बालक को उसमें घूमने फिरने की पूरी स्वतन्तता नहीं रहती। लेकिन बालक के लिये तो घूमने फिरने की स्वतन्त्रता विशेष रूप से आवश्यक है, इसलिये कुछ समय के लिये उसे खुली जगह में ले जाना हमारा कर्तव्य है।

जब बालक चलता हो, चढ़ता हो, चीजें उठाता हो, उन्हें एक स्थान से दूसरे पर ले जाता हो, तो ये सब क्रियायें उसे अपने आप और अपनी गति से करने की पूरी-पूरी स्वतन्त्रता हमें देनी चाहिये।

हमें उसमें जरा भी बाधा न डालनी चाहिये। क्षण भर के लिये भी उसके मार्ग में न आना चाहिये। बीच-बीच में उसे उसकी भूलें बताने या मार्ग-सूचन करने से बालक के कार्य में बाधा पड़ती है और क्रिया पर उसे काबू प्राप्त नहीं होता। जब बालक किसी एक क्रिया को करता है, तो बहुधा हम उसे वैसा करने से रोक देते हैं। हमें ऐसा न करना चाहिये, ऐसा करके हम उसके कार्य और विकास में बाधक ही बनते हैं।

आम तौर पर हमारी यह कहने की आदत होती है, कि यह क्या करता है? ऐसा क्यों करता है? या यह कर और वह कर आदि। हमें अपनी इस आदत को तत्काल सुधार लेना चाहिये और जब बालक कोई काम करता हो, तो हमें यह देखना चाहिये कि वह किस हेतु से कर रहा है, वह क्या सिद्ध करना चाहता है, उसके द्वारा वह कोई स्नायु-गत क्रिया सीखने का प्रयत्न तो नहीं कर रहा है आदि आदि। अपनी उतावली के कारण अथवा अपने अवलोकन के अभाव में हम बालकों की बहुतेरी प्रवृत्तियों को क्रूरता पूर्वक एक झटके में दबा देते हैं। हमें चाहिये कि हम इस सम्बन्ध में खूब सतर्क रहें।

सारांश यह है कि स्वातन्त्र्य मनुष्य जीवन का प्राण और बाल-विकास की आत्मा है। हम इस बात का प्रयत्न करें कि बालक स्वयं ही स्वतन्त्र बने, हम उसे उसका काम स्वयं कर लेने दें, उसे अपना उपयोग स्वयं करने दें, उसे ऐसे रास्ते पर लगा दें कि वह जीवन का स्वयं अनुभव कर सके और हम उसके आस-पास बाड़ के रूप में खड़े-खड़े उसके स्वतन्त्र विकास की रक्षा किया करें। जब माता-पिता अपनी अनेक मनाहियों, निषेधों, को वापस ले लेंगे, अपने विचारों को बालकों पर लादना छोड़ देंगे, और बालकों से अपने आदर्श को मन-

वाने का विचार त्याग देंगे, तभी बालक स्वतन्त्रता की हवा में जी सकेंगे। तभी वे शरीर और आत्मा से स्वाधीन बनेंगे और अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व बना सकेंगे।

दूसरे, बालक की प्रवृत्ति अथवा कार्य का उसके विकास की दृष्टि से तभी कुछ मूल्य हो सकता है, जब बालक उस प्रवृत्ति को अपनी आन्तरिक प्रवृत्ति से अर्थात स्वेच्छा से करता है। जो काम हम बालक से जबरदस्ती कराते हैं, वह काम होता तो है, परन्तु बालक उससे कुछ सीख नहीं सकता, और सच पूछा जाय तो वह उसमें कुछ करता भी नहीं। इसके विपरीत जब बालक अन्दर की भूख से किसी भी काम को लेता और करता है, तो उस काम में वह तन्मय हो जाता है, उस पर अपनी सारी शक्ति लगा देता है, उसके करने में वह एकाग्र, शान्त और व्यवस्थित बनता है, और अन्त में उस काम में प्रवीणता भी प्राप्त कर लेता है। काम समाप्त होने पर वह प्रसन्न होता है, काम से वह न तो थकता है, न ऊबता है, बल्कि हमारे काम को दुगने जोश से शुरू करने का उत्साह और स्फूर्ति उसमें पाई जाती है। लेकिन जब हम जबरदस्ती बालक से कोई काम कराते हैं, तब एक तो उसका चित्त उसमें नहीं लगता, रह रह कर उसका ध्यान दूसरी ओर चला जाता है, और काम खतम होते ही वह छुटकारे की एक लम्बी सांस लेता है, वह थका सा प्रतीत होता है, और अपना मनचाहा कोई दूसरा काम करने की स्फूर्ति उसमें नहीं रह जाती।

अतएव यह स्पष्ट है कि बालक के लिये उसकी वही प्रवृत्ति हर तरह लाभदायक है, या जिसमें वह स्वेच्छा से, स्वयं स्फूर्ति से प्रवृत्त होता है। उसी में वह उत्तम रूप से एकाग्र बन सकता है; उसके द्वारा वह हिलने-चलने आदि की व्यवस्थितता सीखता है; उसी से वह आत्म संयम की ओर बढ़ता है। इसके विपरीत उस पर जबर्दस्ती कोई काम

बालक गाकर खेल रहे हैं।

बालक बगीचे में काम कर रहे हैं।

लाद देने से, उसे बहुत ही नुकसान पहुंचता है। आज तक हमने जिन-जिन विषयों को महत्वपूर्ण माना और उन्हें किसी नियत समय में सिखाने की कोशिशें कीं, उससे हमें यही अनुभव हुआ कि बालक स्वभावतः चञ्चल हैं, वे एकाग्र नहीं रह सकते, बीस मिनट से अधिक किसी विषय पर वे अपने मन को नहीं लगा सकते, और लगातार आध घण्टा काम करने के बाद वे थक जाते हैं। हमारा यह अवलोकन और अनुभव सच था, लेकिन कारण कुछ और ही थे। पुराने लोगों ने यह मान रक्खा था कि बालक का मन स्वभाव से ही इतना चञ्चल है, जब कि असलियत यह थी कि हम अपनी पसन्द के काम या विषय को अपने द्वारा ठहराये हुये समय पर और अपनी निर्धारित की हुई रीति से करवाते या सिखाते थे, बालक सहज ही इससे थक जाता था, और काम में उसका मन नहीं लगता था। जो लोग बालकों के साथ घर में रहते हैं वे भली भांति जानते हैं कि बालक कभी कभी एकाध छोटी मोटी प्रवृत्ति में एक-एक घण्टा तक बिता देते हैं और भकी कभी तो घण्टों उसी में लीन रहते हैं। इसलिये हमें चाहिये कि हम बालकों के लिये ऐसी अनुकूलता पैदा कर दें कि जिससे वे स्वयं-स्फूर्ति से अपने काम कर सकें। हम अपनी पसन्द के काम उनसे जबरदस्ती न करावें।

स्वेच्छा-प्रवृत्ति के लिये, बालक को अपनी पसन्द का समय और कार्य चुनने के लिये, स्वतन्त्रता होनी चाहिये। आम तौर पर बालक अपनी विविध इन्द्रियों द्वारा कुछ न कुछ करना चाहते हैं। हम उनके लिये ऐसे कामों की अनुकूलता कर दें और फिर इस बात का निर्णय बालक पर छोड़ दें कि किस काम को वह कब करे। बालक अपनी इन्द्रिय की भूख और अपनी रुचि के अनुसार काम का चुनाव करता है। यदि हमने चर्खा, तकली, मिट्टी के खिलौने और चित्रकला आदि की सामग्री प्रस्तुत की है, तो बालक अपनी जन्मजात रुचि के अनुसार

इनमें से किसी एक प्रवृत्ति को लेकर बैठ जायेंगे जिसमें चित्रकार के गुण बीज रूप में मौजूद होंगे, वह चित्रकला की सामग्री लेकर बैठेगा। फिर वह कितनी ही देर तक क्यों न बैठे! उस समय यदि हम जाकर कहें कि 'देखो, अब मिट्टी के खिलौने बनाने का वक्त है, खिलौने बनाओ!' और हम उसे इसके लिये मजबूर करें तो चित्रकला में जो प्रवीणता या मौलिकता वह प्राप्त करता, कभी न कर सकेगा, उल्टे अपनी रुचि के विरुद्ध खिलौने बना कर वह उस शक्ति से भी हाथ धो बैठेगा जो आगे चल कर उसमें आ सकती थी। कारण यह है कि जब हम अपनी एक प्रबल इच्छा को रोक कर दूसरा काम हाथ में लेते हैं, तो हमारे दिल में उस काम के लिये भी अरुचि पैदा हो जाती है और यह स्वाभाविक भी है।

इसलिये घरों में भी बालकों को काम बताते समय हमें यह ध्यान में रखना चाहिये कि बालक जिस समय जैसे काम की रुचि बतलावे उसे उस समय वही काम दिया जाय। उसके लिये सिलाई का काम उपयोगी है, यह सोच कर उसे जबर्दस्ती बैठाना उचित नहीं। बालक को शौक तो बागबानी का हो, और काम हम उसे सिलाई का दें, तो यह कैसे हो सकता है? हम अपने खाने पीने आदि का समय नियत कर लें और शेष समय में बालक को अपनी मनचाही प्रवृत्तियां करने की स्वतन्त्रता दे दें, फिर उस वक्त में वह चाहे तो पढ़े, लिखे, सूत काते या बागबानी का काम करे, हम उसमें किसी प्रकार की बाधा न डालें। हम सिर्फ यही देख लें कि बालक अपने काम में एकाग्र है या नहीं, कुछ करने की धुन में है या नहीं, किसी उद्योग में लगा है अथवा नहीं।

अपने प्रयत्न से, अपनी बुद्धि से एक कदम आगे बढ़ने का मूल्य मारे मार्ग-प्रदर्शन और हमारी सहायता से दस कदम बढ़ने की अपेक्षा

बालक धुन और कात रहे हैं ।

कहीं अधिक है। यह सच है कि यदि मह उसे मिट्टी के खिलौने आदि बनाना सिखादेंगे, इस कार्य में उसकी मदद करेंगे तो वह सुन्दर और सुडौल खिलौने बनावेगा। लेकिन उसके अपने प्रयत्न से जो भी बुरा भला बैंगन या अमरूद या आम वह बनावेगा, उसकी कीमत उस सुन्दर सुडौल खिलौने से सौ-गुना ज्यादा होगी। इसलिये हमें तो सदा इसी का ध्यान रखना चाहियें कि बालक ने कौनसा चित्र बनाया है, उसने क्या लिखा है और उसने कैसे रंग पूरे हैं। दिशा सूचक के रूप में हम उसे तरह-तरह के काम बता सकते हैं; यदि कोई काम हमें आता हो तो हम उसके सामने उसे करके बता सकते हैं, लकिन प्रत्यक्ष रूप से उसे अपना अनुकरण करने को कहना उचित नहीं। वह अपनी इच्छा से किसी का अनुकरण करना चाहे, तो भले ही करे।

बाल प्रवृत्तियां

प्रवृत्ति बालक का प्राण है। प्रवृत्ति बिना बालक जी नहीं सकता। भोजन के बिना तो बालक कुछ देर रह सकता है, लेकिन काम के बिना वह एक क्षण भी नहीं रह सकता। प्रत्येक बनस्पति और प्राणी में एक कुदरती ताकत होती है जिसे मानस शास्त्री 'होर्म' कहते हैं। यह प्रेरक शक्ति बालक को विकास की ओर ले जाती है और उसमें हर प्रकार के काम करने की प्रबल इच्छा पैदा करती है। काम करने की यह इच्छा इतनी तीव्र होती है कि दुनियां की कोई शक्ति इसे दबा नहीं सकती। रोकने और दबाने पर भी यह इच्छा बार-बार उठती है और बालक को काम करने के लिये मजबूर करती है। कोई काम न देकर बालक की इस इच्छा को दबाना उसके साथ घोर अन्याय और दुश्मनी करना है। बालक को नन्हां और निर्बल समझ कर माता-पिता उसके लिये काम की कोई आयोजना नहीं करते। उसे कोई काम देना बेकार समझते हैं। बालक की महान शक्तियों का उन्हें ज्ञान कहां? अगर वे यह समझ लें कि बालक बिना थके बिना घबराये उनसे भी अधिक काम करने की शक्ति और साहस रखता है, तो उनका दृष्टि-कोण अपने आप ही बदल जाये।

बालक कभी बेकार नहीं रह सकता। काम के लिये वह तड़पता

रहता है। बड़े पैसे, नाम और परिणाम के लिये काम करते हैं। मगर बालक काम के लिये काम करता है। वह सच्चा कर्म-योगी है। वह गीता के निष्काम कर्म करने की फिलासफी पर अमल करता है। ऐसी हालत में यदि आप उसके लिये काम की व्यवस्था न करेंगे तो वह स्वयं ही अपने लिये काम की कोई योजना बना लेगा। वह आपकी दवात गिरा देगा। आपका शीशा तोड़ देगा। माँ की कङ्घी चबा डालेगा। सिंदूर बखेर देगा। आपकी किताब फाड़ देगा। आप उसे पीटेंगे और वह फिर वैसा ही करेगा। वह आपसे काम मांगता है। काम आप उसे देते नहीं। काम के अभाव में वह तोड़ फोड़ करता है। तब आप चपत से काम लेते हैं। यह कहां का इन्साफ है? इससे न आपको ही लाभ होता है और न बालक को ही। आप भी परेशान होते हैं और बालक भी। लेकिन आपकी परेशानी, आपकी हानि, बालक की परेशानी और हानि के मुकाबले में कुछ भी नहीं है, जो काम न मिलने के कारण उसे सहन करनी पड़ती है। वह बेचारा सदा के लिये निकम्मा बन जाता है, नालायक बन जाता है, पंगु बन जाता है, शैतान और गुण्डा बन जाता है।

बालक एक मिनट के लिये भी खामोश नहीं बैठ सकता। उसके हाथ-पांव, आंख, नाक-कान आदि कुछ न कूछ सूंघने और सुनने के लिये बेकरार रहते हैं। बालक अपने आस-पास की दुनियां को जानना चाहता है। खुद अनुभव करना चाहता है। इसलिये कभी भागता है, कभी कूदता है, कभी उछलता है। कभी जीने पर चढ़ता और कभी उतरता है। कभी कुछ उठाता है और कभी कुछ। गरज यह कि आप चाहे जो करलें वह पत्थर बन कर बैठ नहीं सकता। ऐसा करना उसके लिये अस्वाभाविक और अप्राकृतिक है।

काम करना बालक के लिये इतना प्रिय है कि बीमार होने पर भी

कुछ न कुछ करने के लिये वह बुरी तरह छटपटाता रहता है। बीमारी के जरा कम होते ही वह चारपाई को छोड़ कर इधर-उधर मटरगश्ती करने लगता है। आप चिल्लाते हैं; नाराज होते हैं; पीछे पीछे भागते हैं लेकिन वह आपकी एक नहीं सुनता। प्रवृत्ति बालक के शारीरिक और मानसिक विकास का साधन है। इसलिये बार-बार धमकाये जाने और पिटने पर भी वह प्रवृत्ति करने से बाज नहीं आता। जब आप अधिक तंग करते हैं तो लुक-छिप कर वह अपना काम करता है। हाथ पर हाथ रक्खे बैठे रहना उसके लिये कठिन ही नहीं असम्भव है। बालक अपने सब काम अपने आप करना ही पसन्द करता है। अपना काम अपने आप करके बालक को जितनी खुशी होती है उतनी खुशी किसी विश्व विजयी को भी नहीं हो सकती। बालक की उस खुशी का हम अन्दाजा ही नहीं लगा सकते। एक साल की नीना अपने ही प्रयत्न से जब एक चारपाई से दूसरी चारपाई पर सफलता पूर्वक चली गई तो मारे खुशी के वह नाचने लगी। अपनी इस अभूतपूर्व विजय पर उसे बड़ा गर्व था। कितनी ही देर तक वह उछल कूद करती रही, हँसती रही, इतने से ही उसे सन्तोष नहीं हुआ। अपनी सोती हुई बड़ी बहन रेखा को उसने हिला-डुला कर जगाया और चारपाई की ओर संकेत करके अपनी विजय की उसे सूचना दी। उस वक्त की उसकी गजब की हँसी देखते ही बनती थी। शब्दों में उसे व्यक्त करना मेरे लिये सम्भव नहीं है।

अपनी मन पसन्द प्रवृत्ति में बालक घण्टों तल्लीन रहता है। प्रवृत्ति करते करते वह इतना एकाग्र हो जाता है कि खाना-पीना तक भूल जाता है। बालक की इस एकाग्रता में जब कोई खलल डालता है तो वह विह्वल हो उठता है, फूट-फूट कर रोने लगता है, जैसे आपत्ति का पहाड़ ही उस पर टूट पड़ा हो। प्रवृत्ति बालक का सर्वस्व है।

काम न मिलने से बालक रोरहा है।

काम मिलने से बालक प्रसन्न है।

इसके लिये बहुत खर्च की भी जरूरत नहीं होती। अगर थोड़ा बहुत खर्च करना भी पड़े तो बाल-हित के लिये करना ही चाहिये। जब हम अन्ध-विश्वासों, रस्म रिवाजों, खेल-तमाशों, नाटक सिनेमाओं, शर्दी गर्मियों में अपना सब कुछ बेचकर, कर्ज लेकर भी खर्च करने में आगा पीछा नहीं देखते, तो अपने प्यारे बालकों के लिये हम कुछ भी खर्च नहीं कर सकते क्या ? दुख तो यह है कि बालक के बारे में हम सोचते ही नहीं। उसकी हमें कुछ चिन्ता ही नहीं, परवाह नहीं। हम तो ऐसा मानते हैं कि बालक कुछ कर ही नहीं सकते। जैसा इपर बताया जा चुका है, हमारी यह धारणा बिलकुल गलत है। इसमें जरा भी सार नहीं है। ऐसा समझना हमारी नासमझी है, बाल स्वभाव के प्रति हमारी अज्ञानता का सूचक है। बालक एक नहीं अनेक काम कर सकते हैं। योगी अरविन्द ने बिलकुल ठीक कहा है कि बालक एक जबरदस्त अनवेषक, विश्लेषक और खोजी है। इसलिये यह मिथ्या भ्रम अपने दिमाग से निकाल दें कि बालक कुछ कर ही नहीं सकता। आपकी सुविधा और जानकारी के लिये कुछ काम नीचे दिये जाते हैं, जिन्हें बच्चे बड़ी सुगमता से और हँसते-हँसते कर सकते हैं।

१—बच्चे अपने सब निजी काम बड़े चाव से करते हैं। आम तौर पर माता पिता बालकों को कमजोर समझ कर उनका सब काम खुद कर देते हैं। यह उनकी सख्त गलती है। बच्चों के लिये आप तो केवल सुविधा जुटा दें और दो चार बार उन्हें काम करके दिखा दें। फिर दूर खड़े खड़े देखें कि नहाना, कुल्ला करना, कपड़े पहनना, बटन लगाना और खोलना, जूता साफ करना, पालिश करना, सफाई करना, चीजों को यथास्थान रखना, कपड़े धोना, बर्तन मांजना, खाना परोसना आदि सब काम वे कितनी फुर्ती और चाव से करते हैं।

इसके अलावा घर में बड़े-बूढ़े जो काम करते हैं, वे सब काम भी

बालक कर सकते हैं। घर में माता को साग काटते देख कर बालक भी चाकू उठा कर खुद साग काटने लगता है। इसी प्रकार रोटी बनाना आदि दूसरे काम भी करना चाहते हैं। जब इन कामों से उन्हें रोका जाता है तो छिप कर वे इन सब कामों को करते हैं। बढ़ई का बच्चा बढ़ई के काम करना चाहता है। लुहार का बच्चा लुहार के काम करना चाहता है। ऐसे मौकों को हाथ से नहीं जाने देना चाहिये। ऐसा अवसर आते ही बालक की आयु के मुताबिक औजारों का प्रबन्ध कर देना चाहिये। लन्दन के प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री व समरहिल स्कूल के संचालक मि० नील ने अपनी पुस्तक में लिखा है—"बच्चे को छोटी आरी, कुल्हाड़ी और चाकू से काम करने दो। मेरे स्कूल का सब से छोटा बालक जिसकी उम्र सात साल की है, हर प्रकार के औजार इस्तैमाल करता है। उसके मुकाबले में मैं अपनी उंगलियां अधिक बार कटा लेता हूँ। सात और आठ साल के बच्चे टाइप की मशीन पर बिना उसे खराब किये टाइप कर सकते हैं।"

छोटे मोटे सेवा के काम भी बालक चाव भाव से करते हैं। किसी के लिये पानी मँगवाना हो तो उनसे मँगवाएँ। दौड़ कर लाएँगे। बाजार से कुछ मँगवाना हो तो उन्हें भेजें। खुशी-खुशी जायेंगे। लेकिन जबरन कोई काम उनसे हरगिज न करवाएँ। काम कराने के लिये न सजा दें, और न लालच।

२—लकड़ी की ईंटों और धन को बालक बहुत पसन्द करते हैं। इनसे वे मीनारें, दीवारें, घर, कुएँ, बावली, तालाब आदि बनाते हैं और बिगाड़ते हैं। इनके अलावा इनसे बालक और भी तरह तरह की आकृतियां बनाते हैं। उनकी आत्मा छोटे रूप में लेकिन सम्पूर्ण कल्पना से विविध आकारों की रचना करती है।

२—दियासलाई की भरी और खाली डिब्बियों से बालक खूब

खेलते हैं। बराबर खोलते हैं और भरते हैं, उनसे दीवार, चबूतरे, तालाब, कुएँ, रेल आदि बनाते हैं। दियासलाइयों से बालक जोड़ और बाकी सीखते हैं। उन्हें जमीन पर रख कर तरह तरह की सूरतें बनाते हैं।

४—बालू रेत तो बालकों की खास चीज है। इस पर वे खूब लोटते हैं, फिसलते हैं और खेलते हैं। कुएँ, बाग, सड़कें, किले, पहाड़, नदी कमरे आदि बनाते हैं। बालकों की बनाई हुई इन चीजों को देख कर दांतों तले उंगली दबानी पड़ती है।

५—चित्र बनाना और देखना बालकों को बहुत अच्छा लगता है। बालक पशु-पक्षी, पतिंगों, बाजार और आसपास में होने वाली घटनाओं के चित्र देखना बहुत पसन्द करते हैं। चित्र देते समय बालकों को समझा दें कि वे उन्हें इधर उधर न फेंक कर अच्छी तरह सँभाल कर रक्खें। बालक खुद जो चित्र बनाएँ उनका आप मजाक न उड़ायें। धीरे धीरे वे अच्छे चित्र बनाने लगेंगे। बालकों के बनाये हुये टेढ़े मेढ़े चित्रों की बुराई करके बालकों में छिपे हुये भावी चित्रकारों की आप हत्या कर देंगे। चित्र बनाने के लिये काला तख्ता तथा कुछ सफेद और रंगीन चाक दें। कुछ भी न हो तो धूल में ही उंगली से लकीरें खींचने दें या लिपी हुई जमीन पर चाक से कुछ बनाने दें। इससे कुछ खर्च भी नहीं होता और बालक का विकास भी खूब होता है।

६—कैंची और रद्दी कागजों से बालकों को खिलौने, चित्र, जाली, बेलें, अक्षर आदि बनाने दें। पुराने अखबारों के चित्र काट कर लगाने दें। उसके चारों ओर बेल काटकर लगाने दें। चिपकाने के लिये एक गोंददानी और कचरा डालने के लिये एक टोकरी दें। बालक जो चित्र आदि बनायें, उनका अल्बम बनाया जा सकता है। इधर उधर जो चित्र मिलें उनके भी अल्बम बनाये जा सकते हैं, जैसे—देश विदेश

के नेताओं, पशु-पक्षियों, इमारतों का अल्बम, पहाड़ी दृश्यों का अल्बम, पुराने और नये हथियारों के चित्रों का अल्बम, टिकटों और सिक्कों का अल्बम, फूल-पत्तों का अल्बम आदि।

७—बालकों को नई चीजें बनाने का बड़ा शौक होता है। वे फूलों का हार बनाते हैं। मोतियों की माला बनाते हैं। गत्ते और कागज के खिलौने, फिरकियां, पतंग, बेल और लिफाफे आदि बनाते हैं। रद्दी कागजों की लुगदी से तरह-तरह की चीजें बना सकते हैं।

८—आलपीन और कागज से भी बालक तरह-तरह के खेल खेलते हैं। छोटे बालकों को आलपीन की गड्डी में से आलपीन निकालना और रखना बड़ा अच्छा लगता है। बड़े बालक आलपीनों से कागजों में सूराख करके तरह तरह की शक्लें बनाते हैं। आलपीनों को भिन्न-भिन्न तरीकों से सजा कर नई-नई सूरतें बनाई जा सकती हैं। गिनती का खेल भी खेला जा सकता है। बबूल का कांटा भी आलपीन का काम दे सकता ह!

९—रंग बिरंगे छोटे छोटे टुकड़ों से छोटे छोटे बालक खूब खेलते हैं। रुमाल की तह करते हैं, फिर खोलते हैं, जोड़ते हैं और तरह-तरह से सजाते हैं। कपड़े के टुकड़े रूमाल के साइज के होने चाहिये।

१०-मिली हुई चीजों को अलग अलग करने में भी बालकों को बड़ा मजा आता है। रग-बिरंगे मोतियों, गोलियों तथा कई तरह के मिले हुये अनाजों के दानों को अलग करने का काम बालकों को बड़ा पसन्द है। वे बार बार इन्हें मिलाते हैं और अलग करते हैं। इससे उनके देखने और वर्गीकरण करने की शक्ति बढ़ती है।

११-मिट्टी के खिलौने बनाना तो बालकों को बहुत ही पसन्द हैं। वे इस काम में मस्त हो जाते हैं। अपने अपने अनुभव के अनुसार वे तरह-तरह के फल, जानवर, बर्तन, हवाई-जहाज, घर आदि बनाते हैं।

मिट्टी पर पैसे की छाप लगा कर खेलते हैं। नई-नई चीजें बनाते हैं और बिगाड़ते हैं। गारे से ईंट बनाने का काम भी दिया जा सकता है। मिट्टी के खेल भी खिलाये जा सकते हैं। बच्चों से कहिये "आओ आज सब्जी की दुकान लगायें"। मिट्टी पहले से ही तैयार रखें। अब देखिये बालक कितने चाव से गाजर, बैंगन आदि बनाते हैं। कभी हलवाई और कभी फल वाले की दुकान लगायें। इससे बालकों को चीजों का ज्ञान, नाम व बनाना आयेगा। इतना ही नहीं, सजाना, लगाना, बेचना व खरीदना भी आ जायेगा।

१२—रस्सी बांटना, ताड़ के पत्तों से छोटे छोटे पंखे बनाना, तकली से सूत कातना, जिल्द बांधना आदि उपयोगी काम भी बालक आसानी से कर सकते हैं।

१३—बागबानी का काम बालक बड़ी दिलचस्पी से करते हैं। पौदों को पानी देना, बीज बोना, क्यारियां बनाना, बोने के लिये मिट्टी तैयार करना आदि सब काम भागते दौड़ते करते हैं। काम के साथ साथ कसरत भी होती है और ज्ञान भी बढ़ता है।

१४—जानवरों का पालना बालकों के लिये बड़ा अच्छा काम है। बालकों को तोता, मैना, कुत्ता, बिल्ली, खरगोश, बुलबुल आदि पालने का मौका देना चाहिये। पशु-पक्षियों के परिचय से बालक में प्रेम पैदा होता है। सार-संभाल की आदत का विकास होता है।

१५—संग्रह करने का बालकों को बड़ा शौक होता है। वे नई-नई चीजें खोजते और जमा करते रहते हैं। बालकों की जेब टटोल कर देखिये तो उसमें आपको कङ्कड़-पत्थर, कांच की गोलियां, कागज के रंग-बिरंगे टुकड़ों आदि का एक अच्छा खासा खजाना मिलेगा। इसलिये संग्रह करने की बालकों को आजादी होनी चाहिये। जो बच्चे लिखना जानते हों वे अपनी संग्रह की हुई चीजों, जैसे फूल-पत्तों, पंख,
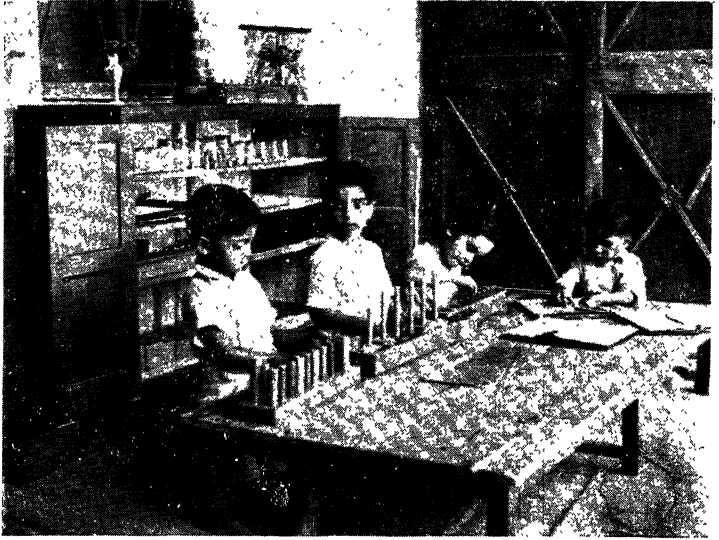
बालक अपनी इन्द्रियों का विकास कर रहे हैं

बालक गट्टा-पेटी से अपनी इन्द्रियों का विकास कर रहे हैं।

घास, शङ्ख, सीपी, चित्र आदि का नाम भी लिखलें तो बेहतर होगा ! संग्रह-वृत्ति को उचित ढंग से विकसित होने का मौका दिया जाय तो यह ज्ञान सञ्चय का जबरदस्त साधन बन सकती है। मिसाल के तौर पर फूल पत्तों से बालकों को वनस्पति शास्त्र का परिचय और भिन्न-भिन्न देशों की टिकटों से उन देशों की बहुत सी बातों का ज्ञान खेल-खेल में कराया जा सकता है।

१६—सिलाई व कटाई का काम भी बालक सुगमता से कर सकते हैं। सबसे पहले बच्चों को सुई का पकड़ना, धागा पिरोना, और सुई का इस्तेमाल करना अच्छी तरह बता दें। धागे रंग-बिरंगे दें। धागों से बालक तरह-तरह के बेल बूटे बनायेंगे। शुरू में बड़ी चीज सीने के लिये न दें। कसीदा सिलाई के बाद शुरू करें।

१७—सैर का बालकों को बड़ा शौक होता है। सुबह शाम उन्हें सैर को ले जायें, कभी बाग में, कभी खेत में, कभी स्टेशन पर, कभी बाजार में। चलने में जल्दी न करें। बालक जहां ठहरना चाहें, उन्हें ठहरने दें। उनके सवालों का शान्ति से जवाब दें! उन्हें डराएँ—धमकाएँ नहीं। छुट्टी के दिन उन्हें कभी चिड़ियाघर ले जांय, कभी अजायबघर। कभी चित्रगृह दिखायें और कभी प्रदर्शनी। जंगल पहाड़ और नदी की भी सैर करायें। कभी मिलों, कारखानों, प्रयोगशालाओं, राष्ट्रीय मलों और जल्सों में ले जांय। कभी अपने मित्रों के घर पर भी ले जांय। रास्ते में बालक जो भी सवाल पूछे उनका प्रेम से जवाब दें। उनकी जिज्ञासा-वृत्ति को सन्तुष्ट करें।

१८—आंखों का खेल बड़ा ही मनोरञ्जक है। सैर में बालकों ने कुछ देखा, उसके बारे में पूछिये। जो सब से अधिक चीजों के नाम बताएँ, वह आंख वाला हुआ, और जो कुछ भी न बता सके वह आंख बन्द करके चलने वाला हुआ। कभी कभी सोच कर बताने के

लिये दस पांच मिनट का समय भी दे दें। लेकिन भूल कर भी हार-जीत की बात बालकों के दिमाग में न आने दें। जो कुछ भी न बता सकें तो उसे जरा भी शर्मिन्दा न करें और न उसकी आलोचन ही करें। अपने हाव-भाव से भी यह जाहिर न करें कि आप उससे नाखुश हैं।

१६—शब्द रचना भी बालकों के लिये एक अच्छा काम है। एक बालक एक शब्द बोले। दूसरा उसके आखिरी अक्षर से आरम्भ होने वाला शब्द बताये। एक दो बार बालकों को यह खेल अच्छी तरह समझा दें और फिर देखें कि वे इसमें कितने मग्न हो जाते हैं। शब्द इस प्रकार चलेंगे—रमेश, शङ्कर, रामपाल, लालच, चावल, लकड़ी, इलायची आदि। बस शब्दों की झड़ी लग जायगी। इस तरह बालकों को कितने ही शब्द याद हो जायेंगे। कुछ बड़े लड़के अन्त्याक्षरी का खेल खेल सकते हैं। इससे बालकों को कितने ही दोहे और पद याद हो जायंगे।

२०—बालकों के लिये कुछ सुन्दर छोटी छोटी शब्द पोथियां बना दें। एक पोथी में तीस-चालीस शब्द काफी होंगे। एक सफे पर एक ही शब्द हो जो मोटी कलम से बड़ा सुन्दर लिखा हो। ये शब्द ऐसे हों जो बालकों के जीवन और उनके आस-पास की दुनियां से सम्बन्ध रखने वाले हों। इसके अलावा अन्य विषयों और विज्ञानों के शब्द भी होने चाहिये। नये-नये शब्दों के लिये बालक बड़े बेचैन रहते हैं। शब्द बालकों को बड़ी जल्दी याद हो जाते हैं। धीरे धीरे बालक अपनी शब्द पोथियां खुद बनायेंगे। शब्दों के अर्थ बताने की कोशिश और जल्दी न करें। बालक पूछें तो जरूर बताएँ।

२१—शब्द पोथी की तरह वाक्य पोथियां भी बना दें। ऐसे वाक्य बनायें जिनमें एक शब्द बार-बार आये, जैसे—गाय घास खाती है।

गाय दूध देती है। गाय सफेद है आदि। ऐसे वाक्य बालक बड़े चाव से पढ़ते हैं।

२२–"पढ़ो और करो" पोथी तो ऊपर वाली दोनों पोथियों से भी मजेदार और दिलचस्प है। इस पोथी में इस ढंग के वाक्य होने चाहिये—चार कदम चलो। बीस तक गिनती गिनो। लँगड़ा कर चलो। मुर्गे की तरह बोलो। आँख बन्द करके चलो। अपनी कलम लाओ, आदि।

२३–बड़े बालकों के लिये सुन्दर और सचित्र पुस्तकें तथा पत्र-पत्रिकाएँ घर में रखें। पुस्तकें मनोवैज्ञानिक ढंग से लिखी हों। छपाई लिखाई सुन्दर और आकर्षक हों। पढ़ने में बालकों को बड़ा आनन्द आता है। वे एक पुस्तक को बार बार पढते हैं। पुस्तकें बहुत बड़ी न हों। भाषा सरल हो। पुस्तकों के अलावा अल्बमों और नकशों की व्यवस्था भी हो सके तो अच्छा है। जो खर्च कर सकते हों उन्हें इन चीजों पर अवश्य खर्च करना चाहिये। नक्शे दीवार पर इस ढंग से टँगे हों कि बालकों को उन्हें देखने में जरा भी कठिनाई न हो। दुनियां का नक्शा भी होना चाहिये। एक दो छोटे ग्लोब भी हों। भूगोल सीखने में बालक को इनसे बड़ी सहायता मिलेगी।

२४–कभी हलवाई की दुकान लगा दें और उसमें लड्डू, पेड़ा आदि सजा दें। हर एक की कीमत लिख कर लगा दें और बच्चों को कह दें—"देखो हमने हलवाई की दुकान लगाई है। सब सामान रखा है। सब पर कीमत लगी है। जिसको जो चीज चाहिये, उसकी कीमत पास रखे सन्दूक में डाल दो और मिठाई ले लो। वहां कोई आदमी नहीं है। मिठाई लेते जाना और दाम डालते जाना। जब बालक खेल रहे हों तो आप दूर बैठे चुपचाप देखते रहें कि बच्चों ने दाम डाले या नहीं। किसी ने न भी डाले हों तो कुछ न कहें। सिर्फ नाम नोट कर

लें। बच्चों को यह पता हरगिज न लगे कि आप उन्हें देख रहे हैं। आखिर में सामान और दाम सँभालें। यदि ठीक हों तो कोई बात नहीं। यदि किसी ने कुछ गड़बड़ की हो तो प्रेम से समझा दें कि माल के दाम जरूर देने चाहिये। इस प्रकार किताबों, फलों आदि का खेल खेलाये जा सकते हैं। इन खेलों से बच्चों को दाम देकर माल लेने, चोरी न करने, किसी का माल आँख बचा कर न उठाने की आदत पड़ जायगी।

२५—शब्दों और पहाड़ों के खेल खिलाएँ। खुद बनालें या बने बनाये मँगालें। साँप औप सीढ़ी तथा अन्य किण्डर गार्टन के खेल बालक घन्टों खेलते रहते हैं। गिनती, अक्षर आदि सिखाने के ताश घर पर बनालें या बने बनाये खरीद लें। आजकल बालोपयोगी कितने ही बौद्धिक खेल निकल आये हैं, उन्हें मँगालें।

२६—डा० मोन्टीसोरी के इन्द्रिय विकास के साधन बड़े ही गजब के हैं। छोटे बालक घन्टों इनसे खेलते हैं और अपनी इन्द्रियों का विकास करते हैं। भौमितिक आकृतियां भी बड़े काम की हैं। इनमें बालक लकीरें खींच कर लेखन की तैयारी करते हैं। ये आकृतियां घर पर भी गत्ते की बनाई जा सकती हैं। जिन्होंने बाल मन्दिरों को डेखा है वे जानते हैं कि इन साधनों में बालक कितना रस लेते हैं। वे इतने मस्त हो जाते हैं कि अपने को भूल जाते हैं।

२७—बाल-उपहार में बालकों को ऐसी चीजें दें जो उनको काम में लगा सकें, जैसे महापुरुषों के चित्र, जानवरों के चित्र, पक्षियों के चित्र, फूलों और वृक्षों के चित्र, जंगलों और पहाड़ों के मनोहर चित्र, मिट्टी, टीन या लकड़ी की बनी हुई चीजें, मिकानों, औजारों की पेटी, तराजू-बाट, फुटबल, गज, आतशी शीशा, मिकनातीस आदि। चित्रों को देख

कर बालक खुश होंगे। नये चित्र बनाने की उनमें इच्छा पैदा होगी। औजारों से तरह-तरह की चीजें बनायेंगे।

२८—रात का प्रोग्राम बड़ा ही मनोरञ्जक और लाभदायक बन सकता है। रात को बालकों को घर का हाल, मुहल्ले का हाल, ग्राम का हाल सुनायें। प्रति दिन होने वाली घटनाओं और देश विदेश की बातों की चर्चा करें। पुस्तक और अखबार रोचक ढंग से सुनाएँ। अपने और बच्चों के बचपन की बातें सुनाएँ। हाव-भाव के साथ कहानी-कविता सुनाएँ। लेकिन अन्ध-विश्वासों, भूत-प्रेतों, जादू-टोनों तथा इस प्रकार की अन्ट-शन्ट कहानियां बालकों को हरगिज न सुनाएँ। नीति और धर्म का उपदेश कभी न दें। जो कुछ भी हो स्वाभाविक हो। सुनी हुई कहानी सुनाने का आग्रह न करें। बालकों की इच्छा के विरुद्ध कुछ न सुनाएँ। जब तक वे सुनना चाहें तभी तक सुनाएँ। बालकों की कहानियां, कविताएँ, दूसरी बातें भी धैर्य से सुनें। उनकी नुक्ताचीनी हरगिज न करें। अगर बालक कुछ सुनना न चाहें तो उन्हें मजबूर न करें।

२९—नाटक खेलना बालकों के लिये बड़ी आनन्ददायक प्रवृत्ति है। नाटकों से बालकों को स्वाभाविक प्रेम होता है। अभिनय एक कला है। इसके द्वारा बालक अपने अन्दरूनी भावों को प्रकट करते हैं। नकल उतारने में बालक कमाल करते हैं। बड़ों की नकल उतारते हैं। जानवरों की नकल उतारते हैं। चाल-ढाल, हाव-भाव, बोली आदि की हू-बहू नकल उतारते हैं। सिपाही बनते हैं, डाकिये बनते हैं, मास्टर बनते हैं, नौकर बनते हैं, तोंद निकाल कर सेठ जी बनते हैं। डाक्टर, वकील और जज बनते हैं। शेर-चीता, घोड़ा-बैल, कुत्ता-बिल्ली आदि बनते हैं। मोटरें हांकते हैं, रेल चलाते हैं, घोड़े पर सवार होते हैं,

लगाम डाल कर घोड़ा दौड़ाते हैं। वर्ड्सवर्थ ने ठीक ही कहा है कि बालक के सब काम समाप्त न होने वाली नकलें हैं।

बड़े होने पर बालक अपने पढ़े हुये या आपके बताये हुये नाटक खेलते हैं। यदि आप निर्दोष नाटक चुनदें तो नाटक करने की उनकी यह प्रवृत्ति खूब सरल हो जाये।

कितने ही घरों में बच्चों को नाटक खेलने से मना किया जाता है। यह ठीक नहीं है। बच्चे नाटक खेलना चाहें तो खेलने दें। हां इतना अवश्य देखते रहें कि उनके नाटकों में गँवारुपन या गुण्डापन न घुसने पाये। इसके अलावा नाटक की ऊपरी बातों पर जोर न दिया जाय। घर की चीजों से ही काम ले लिया जाय। घर का आंगन रंगभूमि है। घर के दरवाजे पर्दे हैं। पिता जी की छड़ी, कभी सेठ जी की लकड़ी, कभी मास्टर साहब का बेंत, कभी तलवार और कभी घोड़ा आदि अनेक रूप धारण कर सकती है।

नाटक स्वाभाविक हों। रटाये बिलकुल न जाएँ। नाटक की कथा बालक समझलें, इतना ही काफी है। फिर बालक जैसा चाहें उन्हें अपने आप करने दें।

३०—वैज्ञानिक खेलों में बालक बड़ा रस लेते हैं। सुविधा और अवस्थानुसार इनकी व्यवस्था घर में की जा सकती है। वैज्ञानिक खेलों पर कुछ पुस्तकें निकली हैं। बाल मासिक पत्रों में भी इनकी चर्चा रहती है। माता-पिता उनकी सहायता से वैज्ञानिक खेल बच्चों को खेलाएँ।

इस प्रकार बच्चों के लिये अनेक प्रवृत्तियां हैं। बालकों को मौका दिया जाय तो वे खुद भी अपने लिये अनगिनत खेल ईजाद कर लेते हैं। तरह तरह की प्रवृत्तियां खोज निकालते हैं।

लेकिन केवल प्रवृत्तियों के नाम जान लेने से ही आपका काम न चलेगा। बालक को काम देने से पहले आपको कुछ करना होगा, सोचना होगा।

सब से पहले प्रवृत्ति करने के लिये घर के किसी कमरे में या कमरे के किसी कोने में या बरामदे में या कहीं भी अपनी सुविधानुसार कोई स्थान निश्चित कर दें।

प्रवृत्ति के लिये साधन सामग्री जुड़ा दें। जैसे कागज, पेन्सिल, चाक, कैंची, गोंददानी, रूमाल, थैला या छोटा सा बक्स, मिट्टी, बालू-रेत, छोटे छोटे औजार आदि आदि।

बालक को खूब अच्छी तरह समझा दें कि वह सब चीजों को कैसे साफ सुथरा और सँभाल कर रखे, कैसे इस्तेमाल करे, कहां रखे और कैसे सजाये?

व्यवस्था रखने के लिये कुछ दो चार मोटे नियम पना दे और उनकी आवश्यकता बालक को अच्छी तरह समझा दें। उदाहरण के तौर पर बालक को बता दें कि कोई बात पूछनी हो, कठिनाई हल करनी हो तो निश्चित समय पर पूछें। प्रवृत्ति करते सनय शान्त रहें, गड़बड़ न करें, काम कर चुकने के बाद हाथ धोये और अपनी सब चीजों को साफ करके यथा स्थान जमा दें, इधर उधर नहीं पड़ी रहने दें।

गर्मी में बालक को केवल एक जांघिया पहना दें। जाड़े में गर्म बनियाना बण्डी पहना दें। अधिक कपड़े उस पर न लादें। कभी कोई चीज खराब हो जाय तो डांटे नहीं।

साधन जुटाने के बाद बालक को अपनी प्रवृत्ति खुद चुनने दें, और अपनी इच्छानुसार उसे काम करने दें, बिना मांगे सहायता हरगिज न दें, काम करते हुये बालक को रोकें टोकें नहीं, वाह वाह और तारीफ

भी न करें। चाहें तो दूर से चुपचाप देखते रहें।

बालक को ऐसी प्रवृत्ति करने के लिये कतई मजबूर न करें जिसे वह आपकी सहायता के बिना कर न सके या जो उसके लायक न हो। सच्ची प्रवृत्ति वही है, जो बालक को अपनी ओर खींचती है, प्रसन्न रखती है और एकाग्र करती है।

बालक के बनाये चित्रों और खिलौनों आदि की निन्दा न करें। बालक बालक ही है, वह आप जैसी चीजें नहीं बना सकता। प्रोत्साहन न दे सकें तो कम से कम उसे निराश और शर्मिन्दा तो न करें। बालक की बनाई हुई चीजों का संग्रह रक्खें।

किसी प्रवृत्ति को करते करते बालक थक जाय या मां से कराने लगे तो समझना चाहिये कि उस प्रवृत्ति से बालक का जी ऊब गया है। ऐसा अवसर आने पर इस ढंग से बालक को उस प्रवृत्ति से हटालें कि उसे जरा भी आघात न पहुंचे।

अनेक अव्यवस्थित कामों की निस्बत एक व्यवस्थित काम देना ही ठीक है। जितना जितना प्रबन्ध कर सकें, उतना उतना ही आगे बढ़ें, छलांग न मारें।

बालक जो कुछ करे उसका गहराई से अवलोकन करते रहें। इससे बालक की रुचि का आपको पता लग जायगा।

प्रवृत्ति देते समय लड़के-लड़की का भेद हरगिज न करें, प्रवृत्ति दोनों के लिये ही आवश्यक है।

इस बात को क्षण भर के लिये भी न भूलें कि प्रवृत्ति बालक के लिये है, बालक प्रवृत्ति के लिये नहीं! आप तो प्रवृत्ति के लिये अनुकूलता पैदा कर दें। फिर प्रवृत्ति करने के लिये बालक को विवश न करें, बालक जो भी करें अपनी इच्छानुसार और खुशी से करें।

बालक लकड़ी की ईंटों से खेल रहे हैं।

बालक के खेल खिलौने

खेल का बालक के जीवन में बड़ा महत्व है। खेल बालक की स्वाभाविक और प्राकृतिक प्रवृत्ति है। खेल बालक के लिये उतना ही आवश्यक ह, जितना कि पानी, प्रकाश और हवा। खेल का बालक को इतना शौक होता है कि वह खेल के मुकाबले में भोजन और नींद तक को भूल जाता है। सर्दी, गर्मी, चोट और बीमारी तक की परवाह नहीं करता। पसीना-पसीना हो जाने पर भी वह खेलना नहीं छोड़ता। पांच साल के विनोद को जब मैं लँगोट कसे घण्टों धूल-मिट्टी में खेलते और अखाड़े में कुश्ती लड़ते देखता था, तो मेरे आश्चर्य की हद न रहती थी। उसके माता-पिता चिल्लाते थे, धमकाते थे, रोटी न देने की धमकी देते थे, लेकिन विनोद उनकी एक न सुनता था। मौका मिलते ही माता-पिता आंख बचा कर झट से अखाड़े में जा धमकता था। जब इस खेल से जी उकता जाता था तो गाने, लिखने और पढ़ने का खेल चलता था। यही हाल एक साल की मञ्जु का था। वह पानी और रेत में घण्टों खेलती रहती थी। खाना-पीना सब भूल जाती थी। स्व० गिजुभाई के बाल-मन्दिर के बालकों का शांति का खेल तो मैं जीवन पर्यन्त भी नहीं भूल सकता। सवा-सौ बच्चों को चुपचाप

बिना जरा सी आवाज किये यह खेल खेलते देख कर आप ही आप मेरे दृष्टिकोण में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गया। उन बच्चों की एक-एक क्रिया आंखें खोलने वाली थी। अपने अपने खेल में वे इतने मग्न हो जाते थे कि अपने आस-पास की दुनियां को बिल्कुल भूल जाते थे। एक दिन की घटना है कि एक हवाई जहाज घूं घूं करता आसमान पर मँडरा रहा था। काम करते और राह चलते अधिकांश लोगों की नजर उसकी तरफ खिंच गई। लेकिन बाल मन्दिर के बच्चे अपने अपने काम में मस्त थे, उन्होंने आंख उठा कर एक बार भी उसकी तरफ देखने का प्रयत्न नहीं किया। सब अपने अपने खेल और काम में उसी तरह जुटे रहे। उनकी एकाग्रता, एक निष्ठता योगियों की अन्तर्मुखी समाधि को भी मात करती थी। और मजा यह है कि बिना नियन्त्रण के बालक यह सब कुछ कर रहे थे। डण्डा लेकर जमादार की तरह उनके पीछे पीछे कोई नहीं फिर रहा था। वे पूर्ण-तया स्वतन्त्र थे। उन पर किसी तरह की पाबन्दी नहीं लगाई गई थी। वे जो कुछ करते थे, अपनी खुशी से करते थे, अपना विकास करने के लिये। इस दृश्य का मेरे हृदय पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। १९३४ ई० में मैंने पहले पहल यह दृश्य देखा था, किन्तु आज भी मानो वह ज्यों का त्यों मेरे मानसचक्षुओं के आगे घूम रहा है।

खेल बच्चे की आन्तरिक भूख है। खेल के द्वारा बच्चे अपने शरीर और मन पर काबू पाना सीखता है। खेल के द्वारा बच्चा अपने को स्वतन्त्र और स्वाधीन बनाता है। खेलते खेलते बच्चा इतनी उन्नति और प्रगति कर लेता है कि वह जैसे सोचता है, वैसे ही करने लगता है। उसकी कथनी और करनी में कोई भेद नहीं रहता। यह विकास की चरमसीमा नहीं तो और क्या है? खेल के द्वारा बच्चा

केवल शारीरिक और मानसिक ही नहीं, बल्कि सामाजिक, नैतिक और भावनात्मक विकास भी करता है।

बालक सामाजिक प्राणी है। तीन चार साल की आयु में ही वह सामूहिक खेलों में आनन्द लेने लगता है। उन्हीं सामूहिक खेलों में बालक अपने साथियों की मदद करना, उनके साथ स्नेह और सहानुभूति दिखाना, उनका अनुकरण करना और पथ प्रदर्शन करना, उनके दुःख में दुखी होना और सुख में सुखी होना सीख जाता है। इन बातों के सीखने में बालक को वर्षों नहीं लगते। केवल छः वर्षों में बच्चा इन सब बातों को सीख जाता है—खेल खेल में, बिना उपदेश के और बिना दबाव के।

खेल सचमुच मानव-जीवन की तैयारी है। बालक बचपन में जैसे खेल खेलता है, भविष्य में वैसा ही बन जाता है।

इसके विपरीत जिस बालक को खेल का मौका नहीं दिया जाता, घर की चार दीवारी में कैद करके रखा जाता है, वह भावी जीवन में बिल्कुल असफल रहता है। उसकी सब शक्तियों पर पानी फिर जाता है। जैसे जसे करके वह अपना जीवन बिताता है। उसमें न आत्म-विश्वास होता है और न इच्छा शक्ति। प्रत्येक छोटे बड़े काम से वह जी चुराता है। अलग अलग रहने लगता है। किसी से बात नही करता। बचपन में जिस बच्चे को गोदी में अधिक रखा जाता है, हिलने-डुलने नहीं दिया जाता, वह बालक वर्षों तक गूंगा-बहरा और लँगड़ा लूला सा रहता है। वह तीन चार वर्ष का हो जाने पर भी चल-फिर नहीं सकता। बोल नहीं सकता। चलने-फिरने और बोलने में उसे बड़ा आलस आता है। उसका सारा दिन रोने-धोने में ही व्यतीत होता है।

यह कभी न भूलना चाहिये कि बालक की प्रत्येक क्रिया खेल है।

बालक का देखना, सुनना, बोलना, हाथ-पैर मारना, करवट बदलना आदि सब क्रियाएँ खेल हैं। बालक हमसे और कुछ नहीं चाहता, केवल अपनी क्रियाओं के लिये सहूलियत और व्यवस्था चाहता है। इतना कर देने पर हमें दूर हट जाना चाहिये। बच्चे को स्वयं आजादी से खेलने देना चाहिये। यह भय दिल से निकाल देना चाहिये कि खेलते-खेलते बच्चा गिर पड़ेगा, चोट खा लेगा। बच्चा बेवकूफ नहीं होता। वह बड़ा समझदार होता है। फूँक फूँक कर, तोल तोल कर कदम रखता है। चोट खाने की सम्भावना ही नहीं रहती। फिर भी अगर मामूली सी चोट लग जाय तो उसकी ओर ध्यान नहीं देना चाहिये। बच्चा ऐसी चोट का खयाल ही नहीं करता। अपनी राय और योजना बच्चे पर नहीं लादनी चाहिये। उसका नेता या पथ-प्रदर्शक भी नहीं बनना चाहिये। खेलते हुये बच्चे को रोकना भी नहीं चाहिये, बिना मांगे सहायता भी नहीं देनी चाहिये। हमारे दखल देने से बच्चा घबरा जाता है। उसे बड़ा क्रोध आता है। उसकी एकाग्रता भंग हो जाती है। सोचने की शक्ति और जिम्मेदारी की भावना पैदा होने नहीं पाती। वह असल रूप में हमारे सामने नहीं आता। हम उसके विकास का ठीक ठीक अन्दाजा नहीं लगा सकते। हां, अगर बालक की जान का खतरा हो तो हमें अवश्य बीच में पड़ कर उसकी रक्षा करनी चाहिये। भोजन या सोने का समय हो गया हो तो भी प्रेम से समझा कर खेल बन्द करा देना चाहिये।

खेल बच्चे में प्रकृति-दत्त शक्ति है, प्रेरणा है। प्राकृतिक-दत्त शक्ति बच्चे को खेलने के लिये विवश करती है, बेचैन बनाती है, चुपचाप बैठने नहीं देती। यही शक्ति बालक को खेल में इतना व्यस्त कर देती है कि वह अपना सारा दिल-दिमाग इसी में लगा देता है। सिवाय इस काम के उसे और कुछ सूझता ही नहीं। परिणाम आदि की वह तनिक

भी परवाह नहीं करता। इसलिये खेल को हम वह काम कह सकते हैं जिसमें बच्चा अपना सारा तन-मन लगा देता है और किसी किस्म के प्रोत्साहन या इनाम की इच्छा नहीं रखता। दूसरे शब्दों में काम खेल का उच्चतम विकास है। इसलिये बालक के जीवन में खेल और काम जैसी दो अलग-अलग चीजें होती ही नहीं। पहले तो यही माना जाता था कि 'जब काम करो तो काम करो और जब खेलो तो खेलो', लेकिन नवीनतम खोजों ने इस सिद्धान्त को बिल्कुल गलत साबित कर दिया है। अब तो यह माना जाता है कि 'खेलो तब काम करो और काम करो तब खेलो'। इस प्रकार काम और खेल में कोई भेद नहीं है, नहीं होना चाहिये।

लेकिन हमें तो विश्वास ही नहीं होता कि खेल और काम एक ही हैं। यही वजह है कि आज भी हम खेल को अच्छा नहीं समझते। बालक का खेलना हमें बुरी तरह चुभता है। हमारा खयाल है कि खेलने से पढ़ाई में हर्ज होगा। हमारे गले यह बात उतरती ही नहीं कि खेल खेल में ही बालक सब कुछ लिख पढ़ सकता है। इसीलिये हमारे आज के घर और स्कूल बालक के लिये जेल से भी बदतर बने हुये हैं। स्कूल से बालक इतना डरता है कि हर वक्त छुट्टी का घण्टा बजने की राह देखता रहता है। छुट्टी का घण्टा बजते ही वह इतना शोर-गुल मचाता और खुश होकर स्कूल से भागता है, जैसे वर्षों का कैदी जेल से छूटा हो। जब तक शिक्षा में खेल की स्प्रिट नहीं आयेगी, तब तक हमारे स्कूल जेलखाने ही बने रहेंगे। जब तक खेल और काम को अलग अलग समझा जाता रहेगा तब तक कर्मठ व्यक्तियों का देश में अभाव ही रहेगा। कौन नहीं जानता कि हमारे देश में इतनी बेकारी होने पर भी सच्चे और ईमानदार काम करने वालों का सर्वथा अभाव है। काम के नाम से सब जी चुराते हैं। बिना निगरानी और डाँट

फटकार के कोई फली तक नहीं फोड़ कर देता। युवकों की दशा तो और भी दयनीय है। वे तो इतने अपाहिज हो गये हैं कि उन्हें कदम-कदम पर नौकर और साइकिल चाहिये। हाथ से कोई काम करना उनके लिये बड़ी भारी मुसीबत है।

यह कहना अनुचित न होगा कि खेल और काम आज दो परस्पर विरोधी चीजें बन गई हैं। जो काम खूब करता है वह खेल से दूर भागता है और जो खेल में खूब दिलचस्पी लेता है, वह काम से नफ़रत करता है। काम और खेल को अलग-अलग समझने का और नतीजा ही क्या हो सकता है? समाज में फैले हुये इस विषैले रोग को दूर करने का एक ही उपाय है, और वह है खेल, काम और शिक्षा को एक ही समझना। गान्धी जी ने बिल्कुल ठीक कहा है—'बुनियादी शिक्षा में काम और खेल दो अलग-अलग नहीं हो सकते।' बालक के लिये तो सब कुछ खेल ही खेल है। इससे भी आगे बढ़ूँ तो कह सकता हूँ कि सारी जिन्दगी ही खेल है। मैं वर्षों से इसी तरह जिन्दा रहा हूँ। मुझे कभी ऐसा नहीं लगता कि चलो अब खेलने का वक्त है, खेलने चलें। मेरे लिये तो लेख लिखना भी खेल है। मेरे खयाल में नई पीढ़ी के बच्चे खेल-खेल में ही शिक्षा ग्रहण करेंगे।

काम में खेल की स्पिरिट आते ही जीवन सुखमय हो जायगा। मानव विकृतियों का शिकार न होगा। चरित्र-भ्रष्ट न होगा। सब अपना काम हँसते खेलते करेंगे। कोई किसी का शोषण नहीं करेगा। नौकर और मालिक का भेद-भाव उड़ जायगा। लेकिन यह तभी हो सकता है, जब बचपन में बच्चे को अपनी रुचि के अनुसार काम करने का अवसर दिया जायगा। उनकी इच्छाओं और भावनाओं को कुचला न जायगा। इतना होने पर ही हमारे देश के बच्चे भी गुड्डे-गुड़ियों के या दूसरे नकली खेलों में अपना समय न गँवा कर उन्नत देशों के

बच्चों* की तरह अपने जौहर दिखा सकेंगे। अगर हमने इस ओर ध्यान न दिया और बालकों को कैद करके ही रखा तो वे अन्दर ही अन्दर हमारे कट्टर शत्रु बन जायेंगे और नकली खेलों द्वारा अपनी दबी हुई इच्छाओं की तृप्ति करते रहेंगे।

बच्चे के खिलौनों का सवाल बड़ा जटिल है। इस विषय में विद्वानों के भिन्न भिन्न मत हैं। उनके विचार कुछ भी हों, मैं तो यही मानता हूँ कि खिलौनों से बच्चों को कोई विशेष लाभ नहीं होता। अनुभव से पता चलता है कि खिलौनों में बच्चे अधिक दिलचिस्पी नहीं लेते। खिलौना मिलने पर पहले-पहल बच्चे को खुशी जरूर होती है। एक दिन के बाद या अधिक से अधिक दो-तीन दिन के बाद बालक उस खिलौने को फेंक देता है, या तोड़-फोड़ डालता है और नये खिलौने की मांग करता है। वह प्रतिदिन नया खिलौना चाहता है। जब नया खिलौना नहीं मिलता तो रोता है, हठ करता है, खाना-पीना छोड़ देता है। नया खिलौना लेकर ही दम लेता है। इस प्रकार बच्चे की हालत शराबी की सी हो जाती है।

खिलौनों से बच्चे को आनन्द नहीं आता। नकली खिलौनों में सच्चे खेलों जैसा आनन्द कहां! सन्तोष कहां! तृप्ति कहां! खिलौने बच्चे को तरंगी बना देते हैं। वह काल्पनिक दुनियां में रहने लगता है। वास्तविक कामों से दूर भागने लगता है। वास्तविक काम करने की वृत्ति जब तृप्त नहीं होती तो वह विकृत हो जाती है और बच्चे को असली काम करने में मजा नहीं आता। उसके स्नायुओं की कसरत न होने से वे अविकसित रह जाते हैं, जिससे बड़ा होने पर वह कोई भी काम ठीक-ठीक नहीं कर सकता। खिलौनों से बालक की जिज्ञासा वृत्ति

---

* उन्नत देशों के बच्चों का हाल विस्तार से पढ़ने के लिये प्रिं० बन्सीधर द्वारा लिखित 'उन्नत देशों के बच्चे' पुस्तक पढ़िये।

शान्त नहीं होती, तोड़-फोड़ की आदत पड़ जाती है।

बच्चा तो प्रवृत्ति-शील है। उसे काम देना चाहिये। हमारा यह खयाल बिल्कुल भ्रम मूलक है कि बच्चा काम से घबराता है। काम पर तो बच्चा भूखे भेड़िये की तरह टूट पड़ता है। रतन वीर, जिसे सब नटखट कहते हैं, अपनी रुचि का काम मिलने पर वह काम पर पिल पड़ता है। उसका नटखट पन, पता नहीं, कहां दुम दबा कर भाग जाता है। इसलिये बच्चे को खिलौनों के चक्कर में न डाल कर प्रवृत्तियां देनी चाहिये।

हां, दो ढाई साल तक के बच्चों के लिये हम खिलोने दे सकते हैं। लेकिन खिलौनों के चुनाव में बड़ी सावधानी से काम लेना चाहिये। बच्चे के खिलौने सीधे-सादे और मजबूत हों, लेकिन कलात्मक ढँग से बने हुये होने चाहिये। बहुत भारी, बहुत महँगे और जल्दी टूटने वाले नहीं होने चाहिये। टूटने-फूटने वाले खिलौने बालक में तोड़ने-फोड़ने की आदत पैदा करते हैं। बच्चे को बहुत ज्यादा खिलौने नहीं देने चाहिये। इनका न तो, बच्चा महत्व ही समझ सकेगा, न इनको साफ-सुथरा रख सकेगा और ना ही इनकी सार-सँभाल कर सकेगा। इस प्रकार बच्चे में अस्वच्छता और अव्यवस्था आजायेगी।

खिलौने भिन्न-भिन्न प्रकार के होने चाहिये। मिसाल के तौर पर बच्चे के वास्ते गेंद खरीदनी हों तो वे भिन्न भिन्न रंगों, भिन्न भिन्न परिमाणों, भिन्न-भिन्न वजनों, भिन्न भिन्न आकारों, भिन्न भिन्न पदार्थों की तथा चिकनी, खुरदरी, मोटी; पतली, भारी, हलकी, नर्म और सख्त होनी चाहिये। इन विभिन्न प्रकार की गेंदों से बच्चे को रंगों का, आकारों का, पदार्थों का, मोटेपन, पतलेपन आदि का ज्ञान हो जायगा। इसके अलावा बच्चे को इनसे गिनती भी सिखाई जा सकती है।

बालक को बन्दूक, तलवार, भाला तथा लड़ाई के अन्य अस्त्र-शस्त्र आदि के खिलौने नहीं देने चाहियें। ऐसी पुस्तकें भी न दें, जिनमें लड़ाई की तारीफ की गई हो। ऐसे खिलौनों और पुस्तकों से बालक में अहिंसा वृत्ति पैदा होने की सम्भावना रहती है। बालक को बहुत पेचीदा और कलदार खिलौने भी नहीं देने चाहियें। ऐसे खिलौने बालक पसन्द नहीं करता। ऐसे खिलौनों में बालक को कुछ करना धरना नहीं होता चुप चाप देखना पड़ता है। बालक की जिज्ञासा-वृत्ति शान्त नहीं होती और ना ही सोचने की शक्ति बढ़ती है। उलटा नाराज़ होकर बालक उन्हें तोड़-फोड़ डालता है।

बालक को ऐसे खिलौने देने चाहियें जिन्हें वह अलग करके फिर उसी तरह जोड़ सके। ऐसा करने से बालक की कल्पना-शक्ति बढ़ेगी उसे सोचना पड़ेगा। अच्छा तो यह हो कि बालक को ऐसी चीजें दी जांय जिनसे अपने खिलौने वह खुद ही बना सके।

खिलौनों का चुनाव करने में बालक की मानसिक अवस्था आवश्यकता और रुचि का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिये। होशियार बालक को मामूली खिलौना दिया गया तो वह उसमें कोई दिलचस्पी नहीं लेगा। छोटी उम्र के बच्चे को बड़ी उम्र के बालक का खिलौना देने से उसमें लघुता की भावना पैदा हो जायगी। इसलिये योग्यता और विकास के अनुसार खिलौने बदलते रहने चाहियें। दो साल के बच्चे को झुनझुना देना उसका अपमान करना है। इसके अलावा अपनी रुचि के खिलौने बालक को भूल कर भी नहीं चाहिये।

खिलौने रखने के लिये बालक को घर के किसी कोने में बिल्कुल अलग स्थान मिलना चाहिये, जहां वह इन्हें खूब सजा कर रख सके।

अगर घर में कई बालक हों तो उनके खिलौने अलग-अलग होने चाहियें। ज़बरदस्ती एक बालक का खिलौना छीन कर दूसरे बालक को

नहीं देना चाहिये। अगर बालक अपना खिलौना न दे तो उसे यह कह कर चिढ़ाना भी नहीं चाहिये कि यह तो बड़ा लालची है, स्वार्थी है, किसी को कभी अपनी चीज नहीं देता। हमारे इस प्रकार के व्यवहार से बालक में द्वेष-भाव पैदा हो जाता है, और वे एक दूसरे से जलने लगते हैं। आपस में खेलते खेलते बालक खुद ही धीरे धीरे एक दूसरे से चीज़ लेना देना सीख जायगे। उपदेश या डाँट-फटकार से पारस्परिक सहयोग की भावना न आज तक पैदा हुई है और न आइन्दा कभी पैदा हो सकेगी। घर का प्रेम-पूर्ण और सहयोग पूर्ण वातावरण ही इस भावना का विकास कर सकता है। जहां लालच, स्वार्थ और संकीर्णता का दौर दौरा हो, वहां बालक से उदारता और सहयोग की आशा रखना दुराशा-मात्र है।

इतना जान लेने के बाद दो-ढाई साल तक के बच्चे के लिये खिलौनों का चुनाव करने में कठिनाई नहीं होगी।

पहले दो तीन महीनों में बालक को खिलौनों की आवश्यकता नहीं होती। इस समय तो केवल उसके पालने में रंगीन और सुन्दर बजने वाले लटकन आदि लगवा देने चाहियें।

घुटनों चलने के बाद तक बालक चमकीले और रंगीन मोटे मणियों की माला, बटनों की लड़ी, तालियों का गुच्छा, लकड़ी के चम्मच, झुनझुने, बजने वाले पात्रा, रबड़ और लकड़ी के रंगीन व सुन्दर खिलौने तथा रबड़ की गेंदें बहुत पसन्द करता है। इस समय बालक हर चीज को मुँह में डाल कर चूसने लगता है, इसलिये सब खिलौनों को धोकर साफ कर देना चाहिये। लोरियां भी बालक को खूब सुनानी चाहियें। मां की मीठी लोरियां बालक को बहुत प्रभावित करती हैं।

एक साल के बाद बालक को ढकने और उघाड़ने, खोलने और बन्द करने में बड़ा मज़ा आता है। ढक्कन लगाना और उघाड़ना बालक की खास प्रवृत्ति है। दियासलाई की खाली डब्बियों को वह बार बार खोलता और बन्द करता है। चढ़ने और फिसलने का भी बालक को बड़ा शौक होता है। इसलिये बालक को ऐसे टोकरे देने चाहिये जिनमें वह दुबक सके और निकल सके।

डेढ़ साल का हो जाने पर बालक खूब चलने फिरने लगता है। इस समय बालक कुर्सी या स्टूल जो कुछ भी सामने आता है, उसे ही खिलौना बना कर कितनी ही देर तक खेलता रहता है। इधर उधर धकेलता है, कभी चढ़ता है और कभी उतरता है। इस समय गत्ते पर बनी हुई तसवीरों की किताबें भी देनी चाहियें। सफे उलटना बालक का बड़ा प्रिय खेल है। उंगलियों पर काबू पा जाने पर असली चित्रों की किताबें देनी चाहियें और पन्ने उलटना बता देना चाहिये। इससे बालक को बड़ा लाभ होता है। सफे उलटते उलटते वह चित्रों में दिलचस्पी लेने लगता है, नयी-नयी किताबों की मांग करता है और चित्रों के बारे में पूछने लगता है।

इस समय बालक को लकड़ी की ईंटें भी देनी चाहिये। ईंटों से बालक तरह तरह की इमारतें और शक्लें बनाता है और बड़ा खुश होता है। बालक की तोड़-फोड़ की आदत छुड़ाने के लिये ईंटें बहुत ही उपयोगी हैं। तोड़-फोड़ बालक उस वक्त करता है, जब उसे कुछ करने को नहीं मिलता। पानी और मिट्टी बालक के सब से प्रिय खेल-खिलौने हैं। इनसे वह घण्टों खेलता रहता है। इनसे खेलने के सुन्दर और उपयोगी तरीके बता देने चाहियें।

दो वर्ष के बालक के लिये डा० मोण्टीसोरी की चार गट्ठा पेटियां, मिनारे आदि कितने ही साधन बालक के शारीरिक और मानसिक विकास

के लिये बेजोड़ हैं। ये चीज़ें घर पर भी बनवाई जा सकती हैं और बाहर* से बनी बनाई भी मँगवा सकते हैं।

दो ढाई साल के बाद बालक का मन खिलौनों से उकता जाता है, वह अब काम चाहता है, प्रवृत्ति चाहता है, असली खेल चाहता है, इसलिये इस समय बच्चे के लिये असली खेलों का और प्रवृत्तियों का प्रबन्ध होना चाहिये।

---

* डा० मोण्टीसोरी के साधनों के मिलने का पताः—
जैचन्द तलकशी एण्ड सन्स, बुकसेलर, एम्पायर रोड,
हौर्नबाई रोड; फोर्ट, बम्बई।
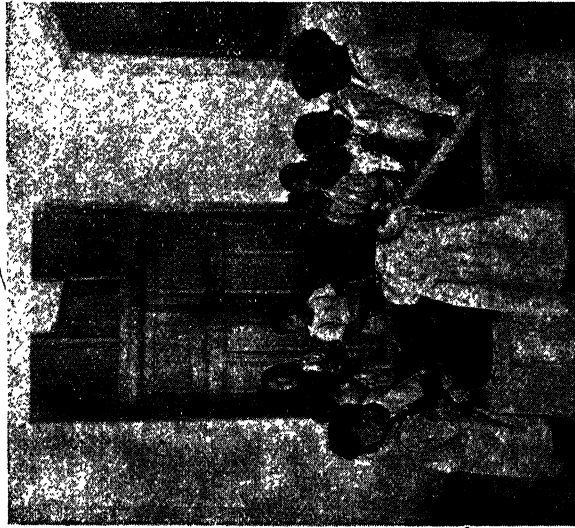
बालक रेत से खेल रहे हैं।
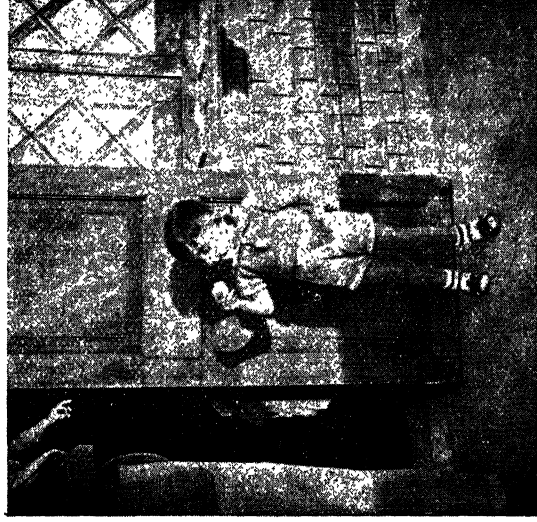
बालक अपने खिलौने को ध्यान से देख रहा है

खेल खेल में शिक्षा

प्रायः लोग ऐसा मानते हैं कि पांच छः वर्ष का बालक लिख पढ़ नहीं सकता। यह समय खेल कूद, खाने पीने का है, पढ़ने लिखने का नहीं क्यों कि पढ़ने लिखने से बालक कमजोर हो जाते हैं। लेकिन यह मान्यता बिल्कुल गलत और झूंठी है। इसमें रत्ती भर भी सचाई नहीं है। जन्म से छः साल तक का समय बालक की शिक्षा और विकास के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण है, इस समय बालक जितना विकास कर सकता है, उतना विकास वह सारी उम्र में भी नहीं कर सकता। निस्सन्देह बालक की शिक्षा पालने में ही शुरू हो जाती है। बालक की सब से पहली शिक्षा माता की प्रेम भरी लोरी, प्रेम भरी निगाह और प्रेम भरा लालन-पालन है। माता ही सब से पहला गुरु है। बालक के कोमल हृदय, मन और शरीर पर माता की शिक्षा का जो गहरा प्रभाव पड़ता है, उसे कोई भी शक्ति मिटा नहीं सकती। वही बालक होनहार होता है जिसकी शिक्षा पालने में ही आरम्भ हो जाती है। इसीलिये यह कहावत है—"होनहार बिरवान के होत चीकने पात।" आज तक दुनियां में जितने भी महापुरुष और वीर हुये हैं, वे सब इसी पालने की शिक्षा की देन है।

शिक्षा का अर्थ केवल गिनती-पहाड़े रट लेना या अक्षर-ज्ञान प्राप्त करना ही नहीं है। शिक्षा का असली मक़सद है जीवन-निर्माण, बालक में छिपी हुई शक्तियों और व्यक्तित्व का विकास, जिससे वह अपनी समस्याएँ खुदबखुद हल कर सकें। इसलिये सब से पहले बालक को अपने सब दैनिक काम समय पर करवाने की आदत डलवानी चाहिये। आज के बालक का जीवन बिल्कुल अनियमित है। न वह समय पर सोता है न जागता है, न समय पर भोजन करता है, न समय पर शौच जाता है, और न समय पर स्नान करता है। यही हाल सफ़ाई, स्वच्छता और व्यवस्था का है। उसकी चीज़ें इधर उधर बिखरी पड़ी रहती हैं। कपड़े गन्दे रहते हैं। नाक, आँख, दाँत आदि का भी यही हाल है। समय पर काम न करने के कारण बालक जीवन भर दुखी और परेशान रहता है। बड़ा होकर अगर वह समय पर काम करने की कोशिश भी करता है तो असफल रहता है क्योंकि बाल्यावस्था में समय पर काम करना उसे सिखाया ही नहीं गया है। इसके लिये माता पिता ज़िम्मेदार हैं। वे न समय पर काम करते हैं और न बालक को समय पर काम करना सिखाते हैं। अन्य आदतों की तरह समय पर काम करने की आदत भी बचपन में ही पड़ सकती है। यही समय उसके लिये उपयुक्त है। इसलिये समय पर काम करने की आदत बचपन में ही डलवानी चाहिये। लेकिन समय पर काम कराते समय बालक की प्रकृति तथा अवस्था का ध्यान रखना बड़ा ज़रूरी है। जड़वत नियम पालन कराने से लाभ के बजाय हानि बहुत अधिक होती है। किसी खास कारण से किसी दिन बच्चा अपना कोई काम नियत समय पर न कर सके तो उसे इसके लिये विवश हरगिज़ न करना चाहिये। समय पर काम करने के अलावा बालक को अपने सब काम अपने आप ही करने की सहूलियत और आज़ादी देनी चाहिये।

बालक सामाजिक प्राणी है। वह अकेला रह नहीं सकता। छः माह का हो जाने पर ही बालक साथियों की आवश्यकता महसूस करने लगता है। अगर उसे साथी नहीं मिलते तो वह बीमार पड़ जाता है, और कभी २ तो मृत्यु तक हो जाती है। मानसिक भूख को बालक सहन नहीं कर सकता। इसलिये माता को चाहिये कि आस पास के बालक को अपने घर बुलाएँ और सब को साथ मिल कर खेलने दें। कुछ माता-पिता अपने ही बालक को प्यार करते हैं, दूसरो के बालक को नहीं। वे अपने बच्चों को अलग-अलग रखते हैं, किसी से मिलने जुलने नहीं देते। इसका नतीजा यह होता है कि ब लक में दूसरों के प्रति घृणा, डाह तथा ईर्ष्या के भाव पैदा हो जाते हैं। वह जन्म भर स्वार्थी, अशान्त और कठोर बना रहता है। दूसरों के दुख सुख की वह ज़रा भी परवाह नही करता। इसलिये बालक को दूसरे बच्चों के साथ मिलने और खेलने का मौका मिलना चाहिये। बच्चों का प्रेम से मिलना और प्रेम से खेलना ही बहुत बड़ी शिक्षा है। इससे हार्दिक, सामाजिक और नैतिक शक्तियों का विकास होता है और बच्चे सच्चे नागरिक बनते हैं। खेलते खेलते जब जब बालक लड़ भिड़ पड़ें तो बिना किसी की झूंठी तरफदारी के लिये उन्हें समझा देना चाहिये।

इन्द्रियों की शिक्षा—ज्ञानेन्द्रियों के उपयोग से ही शिक्षा का आरम्भ होता है। इसलिये बालक को अपनी ज्ञानेन्द्रियों को स्वयं काम में लाने का मौका मिलना चाहिये। इससे उसके ज्ञान में वृद्धि होगी, उसका विकास होगा और क्रिया शक्ति बढ़ेगी। इन्द्रिय विकास का काम शुरू से ही होना चाहिये। तीन माह की उम्र में बालक को छत पर या बाहर ले जा कर घर की चीजे, फूल, वृक्ष तथा अन्य पदार्थों को देखने का अवसर देना चाहिये। टनटन, पों पों, भैं भैं, चैं चैं, म्याऊं म्याऊं, कांय कांय आदि आवाज़ों को सुनने देना चाहिये। लेकिन

बालक कागज बना रहे हैं ।

फिर मिट्टी के खिलौने आदि देकर कहें कि देखो ये कितने सख्त हैं। इसी प्रकार ठण्डे व गर्म का ज्ञान करादें। छूकर वस्तुओं के ज्ञान का खेल भी खेला जा सकता है। बालक की आंख बन्द कर दें फिर कोई चीज़ लें और उसके हाथ में देकर पूछें—यह क्या है ?

चखने का ज्ञान कराने के लिये खट्टी, मीठी तथा नमकीन चीज़ें बालक को चखायें और साथ ही उस चीज़ का नाम और स्वाद भी बता दें। बहुत तेज़ चीज़ जैसे लाल मिर्च आदि कभी उसके मुँह में न दें।

निगाह व स्मरण-शक्ति को बढ़ाने के लिये 'क्या देखा' का खेल खेलना बहुत लाभदायक है। बाज़ार या बाग में से लौटने पर पूछें, 'क्या क्या देखा ?' बालक बड़ी खुशी से चीजों के नाम गिनाने लगेगा। बालक लिखना जानता हो तो लिखवाएँ। कभी बालक से पूछिये कि उस दिन हम अपने मित्र के यहां गये थे या दुकान पर सामान खरीदने गये थे, तुम्हें याद है न ? आज फिर वहीं चलना है, तुम ले चलो।

कभी एक पटरे या छोटी मेज़ पर दस पन्द्रह चीज़ें रख दें और कपड़े से ढक दें। सामने बालक को बिठा दें, फिर एक दो मिनट के लिये कपड़ा हटा दें और बालक से उन चीज़ों को देखने के लिये कहें और फिर उन चीज़ों पर कपड़ा डाल कर पूछें—'क्या क्या देखा ?'

इन्द्रियों के विकास के लिये डा० मोण्टीसोरी के वैज्ञानिक ढँग से बने हुये साधन कमाल के हैं। जो माता-पिता ख़रीद सकें उन्हें जरूर खरीद दें। इन्द्रियों की शिक्षा को आप साधारण न समझें। इसी शिक्षा पर बौद्धिक शिक्षा का दारमदार है। वही बालक बड़े बन कर आविष्कार वैज्ञानिक, चित्रकार, संगीतज्ञ, लेखक आदि बनते हैं, जिन्हें बचपन में इन्द्रिय विकास का भली प्रकार अवसर मिलता है। इसलिये बालक

को देखने, सुनने, सूँघने, छूने और चखने का मौका दें। इस काम के करने में उसे रोकें नहीं, डांटे नहीं।

गणित—गणित भी बालक खेल खेल में सीख सकता है। साधनों द्वारा असली रूप से गणित सीखने में बालक को बड़ा ही मजा आता है। स्कूल के बालकों की तरह घर या बाल-मन्दिर में पढ़ने वाले बालक गणित से घबराते और भागते नहीं। गिनती सिखाने के लिये बालक को एक ओर खड़ा कर दें और दूसरी ओर आप खड़े हो जांय। अब एक गेंद लेकर बालक की तरफ फेंकें और कहें 'एक' और जब गेंद लौट कर आए तो कहें 'दो'। इस प्रकार दस तक गिनती सिखा दें। इसके बाद सौ तक आगे बढ़ा सकते हैं। मोतियों, गोलियों और दियासलाइयों से भी गिनती सिखा सकते हैं। दहाई और सैकड़ा आदि का ज्ञान देने के लिये दियासलाइयों का दस दस, सौ सौ और हज़ार हज़ार आदि का बण्डल बना लें। मोतियों से भी यह काम लिया जा सकता है। गिनती आने हर जोड़ बाकी, गुणा और भाग बड़ी आसानी से खेल के द्वारा सिखाये जा सकते हैं। खेलों के नाम पहले से ही सोच लेने चाहियें जैसे गिनती का खेल, जोड़ का खेल आदि। पहाड़े बालक को कभी न रटाएँ। अभ्यास करते करते और खेल खेलते खेलते बालक को पहाड़े आसानी से याद हो जांयगे। इनके खेल बनालें या बने बनाये खरीद लें। अङ्कों, जोड़ और बाकी आदि गणित के सब नियमों का ज्ञान कराने के लिये डा० मोन्टीसोरी के गणित के साधन बड़े ही उपयोगी हैं। इनके द्वारा गणित समझने में बालक को ज़रा भी देर नहीं लगती और कुछ कष्ट भी नहीं होता।

रेखा गणित का ज्ञान भी साधनों द्वारा बड़ी सुगमता से कराया जा सकता है। अक्षर ज्ञान व बांचन कठिन से कठिन भाषा बालक वातावरण से सीख जाता है। आप सदा बालक के साथ शुद्ध भाषा में

बातचीत करें, रोचक कहानियां सुनायें। बालक जो कुछ सुनाना चाहे उसे चाव-चाव से सुनें। कभी कभी बालक को अपने मित्रों के यहां ले जायें और उसे खूब सुनने का मौका दें। इस प्रकार पांच वर्ष तक भाषा का बालक को पूर्ण ज्ञान हो जाता है। इस समय बालक हिन्दी, उर्दू आदि भाषाएँ आसानी से सीख सकता है। अक्षर ज्ञान कराने के लिये हिन्दी अक्षरों के बड़े-बड़े चार्ट बालक के खेलने के कमरे में लगा दें। बालक जब पूछे तो फौरन अक्षरों के नाम बता दें। दूसरा साधन यह है कि लकड़ी के अक्षरों का एक बक्स मँगवाएँ और बालक के साथ उससे खेलें। अक्षरों की चौसर व खेल भी आते हैं। उनसे भी काम ले सकते हैं। रेगमाल के कटे हुए अक्षर इस काम के लिये बहुत ही बढ़िया हैं। पहले आप 'अ' अक्षर लें और धीरे-धीरे उस पर बड़ी सावधानी से उंगली फेरें और उसका नाम लें। और फिर बालक को यही क्रिया करने दें। एक बार में दो ऐसे अक्षर लेने चाहियें जिनके मिलाने से कोई शब्द बन जाय जैसे 'न' और 'ल' 'प' और 'र' आदि। इसी प्रकार दो दो अक्षर लेकर सारे अक्षर सिखादें। जब बालक सब अक्षर सीख जाय तो आंख बन्द करके खेल खिलाएँ। सिलसिले वार अक्षर न रटाएँ जैसा कि आम तौर पर स्कूलों में होता है।

अक्षरों की पहचान आने के बाद शब्दों व नामों के चार्ट किताबें व खेल लेकर खिलाया करें। कमरे की पहली दीवार पर अक्षर व शब्दों के चार्ट, दूसरी पर नामों के चार्ट, तीसरी पर गिनती के चार्ट और चौथी पर कुछ वाक्यों के चार्ट लगा दें। इस प्रकार जिधर बालक की निगाह जाय और वह कुछ पूछे तो आप उसी समय बताएँ।

अक्षरों का खेल भी खेलें, एक गेंद पर 'क' लिखें और दूसरी

पर 'ब'। बालक आपकी ओर गेंद फेंके और आप बालक की ओर। इन गेंदों के नाम 'क' और 'ब' बताते जांय। इस प्रकार खेल खेल में सब अक्षर याद करादें।

अक्षरों के आ जाने के बाद शब्दों और वाक्यों के खेल खेलें। छोटे छोटे गत्ते के टुकड़ों पर बहुत से शब्द लिख लें। सब को मिला कर रखें। फिर बालक से कहें—'देखो राम का खेल खेलते हैं। इन में से राम को ढूंढो। बालक बड़े चाव से राम को ढूंढने लग जायगा। इस प्रकार शब्द बदलते जांय। फिर दो-दो चार-चार शब्द तलाश कराएँ और उन्हें बराबर लगवा कर वाक्य बनवाएँ जैसे—'राम गाना गाता है'। शब्द बनाने का एक और भी तरीका है। गत्ते के टुकड़ों पर सुन्दर सुन्दर अक्षरों के कई सेट लिख लें। फिर बालक से कहें 'आओ आज शब्दों का खेल खेलें'। पहला पत्ता बालक डाले। मान लें कि वह 'अ' डालता है, तो आप उसके सामने 'ब' डाल कर पूछें कि यह क्या है? जब बालक ठीक ठीक बतादे तो उसी शब्द को जल्दी से बुलाएँ। बालक के मुँह से निकलेगा 'अब'।

इसी प्रकार वाक्यों के भी बहुत से खेल बन सकते हैं। वाक्यों से छोटी छोटी कहानियां भी बन सकती हैं। इसके लिये बहुत सरल कहानियों की कोई पुस्तक लाएँ, उसके सफे अलग अलग कर लें। फिर उसकी कहानियां और उनके वाक्य अलग अलग काट कर गत्तों पर चिपकालें। इस प्रकार के ताशों से खेल खेल में ही बालक छोटी-छोटी कहानियां सीख सकता है।

इतने खेल खेलने पर बालक को पढ़ने में ज़रा भी दिक्कत न आयेगी। बालक को छोटी छोटी रोचक पुस्तकें दें। बाल मासिक पत्र भी दें। बालक खूब मन लगा कर पढ़ते हैं, एक कहानी को बार बार
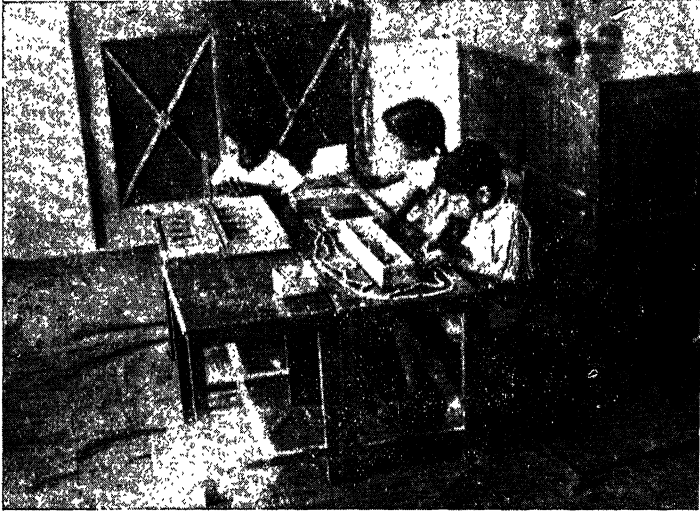
बालक साधनों द्वारा गणित सीख रहे हैं।

बालक भाषा पढ़ना सीख रहे हैं।

पढ़ते हैं। दूसरों को पढ़ कर सुनाते हैं। दैनिक अखबार सामने आ जाता है तो उसे भी उठा कर पढ़ने की कोशिश करते हैं।

लेखन शिक्षा—लिखना तो बालक पढ़ने से भी पहले बिना सिखाये सीख जाते हैं। बालक को लकीरें खींचने की आदत होती है। जो कुछ उसके हाथ में आता है, उसी पर लकीरें खींचने लगता है। इसलिये बालक जब कोयला लेकर लकीरें खींचे तब उसे रोकें नहीं। उसका हाथ अपने हाथ में पकड़ कर उससे उसका नाम लिखवाएँ। अपना नाम लिख लेने पर बालक बड़ा खुश होगा। वह सबको दिखाता फिरेगा। उछल उछल कर अपनी खुशी प्रगट करेगा। इस प्रकार लकीरें खींचते खींचते बालक अक्षर बनाने लगेगा। बालक के लिये जमीन पर साफ रेत बिछादें जिससे वह उँगली से या तिनके से अक्षर बनाया करे। अक्षरों का एक चार्ट भी टांग दें, जिसे देख कर बालक नकल करेगा। बालक में नकल करने की आदत होती है। वह जो कुछ देखता है उसकी नकल करता है। लेखन की पूर्व तैयारी के लिये डा० मोन्टीसोरी की भौमितिक आकृतियां बड़े ही काम की हैं। इनमें लकीरें खींचते खींचते बच्चा अपने आप लिखना सीख जाता है।

पत्र-लेखन—लिखना आ जाने के बाद बच्चा पत्र लिखना भी सीख जाता है। बच्चे से कहें कि अपने भाई के नाम पत्र लिखे जो कालेज में पढ़ता है। बालक को कागज पेन्सिल आदि आवश्यक चीजें दे दें। पत्र लिख कर वह बड़ा खुश होगा। पत्र लेकर आप कहें—'वाह यह तो बहुत अच्छा लिखा है'। देखो यहां पता लिखते हैं, यहां तारीख, यहां सरनामा और यहां अपना नाम लिखते हैं। बालक बड़ी खुशी से वैसे ही लिखने की कोशिश करेगा। फिर भी कोई गलती रह जाय तो परवाह न करें। दोबारा ठीक कर लेगा। आये हुये पत्र उससे पढ़वायें और उनका जवाब भी लिखवायें। लिखते-

लिखते बालक को अच्छा अभ्यास हो जायगा। बालक की गलती निकालने की गलती कभी न करें, ऐसा प्रयत्न करें, ऐसा रास्ता निकालें कि बालक अपनी गलती खुद ही ठीक कर ले। नमूने के पत्र लिख कर उसके कमरे में टांग दें। देखते-देखते पत्र सम्बन्धी बहुत सी बातें बच्चा सीख जायगा।

भूगोल की शिक्षा—भूगोल सिखाने के लिये घर के किसी कोने में साफ मिट्टी डलवायें। फिर बच्चे से कहें—आज पहाड़ों का खेल खेलेंगे। बच्चा खुशी खुशी पहाड़ बनायेगा। दूसरे दिन नदियों का खेल खेलें। खेलों को खूब रोचक बनाएँ और खुद भी उनमें भाग लें। पहाड़ों का खेल हो तो उन पर पौधे, नाले, बर्फ सब कुछ दिखायें, पहाड़ी जानवर भी दिखायें, कहीं कहीं पत्थर और मिट्टी लगा दें, छोटे पौधे और घास लगा दें। कही पशु पत्ती बिठा दें। पानी के नाले बहा दें। भूगोल सिखाने का एक और भी तरीका है। सब देशों के छोटे छोटे झण्डे मँगालें, उनको बालक को समझा दें—यह भारत का झण्डा है—यह इंगलैण्ड का झण्डा है, आदि। फिर बालक से कोई झण्डा निकलवायें और उसका हाल बतादें। सचित्र तथा दूसरे नक्शे भी दिखायें। बारिश के दिनों में बालक को नदी नाले दिखाया करे। इस तरह बालक को भूगोल का बहुत सा ज्ञान हो जायगा। खेल खेल में दिशाओं का ज्ञान भी करा सकते हैं।

प्राकृतिक ज्ञान—बालक के विचार विशाल बनाने के लिये उसे प्रकृति की सैर अवश्य करावें। कभी नदियों के किनारे घुमाने ले जांय, कभी जंगलों में पहाड़ों के शिखर पर और कभी चिड़ियाघर ले जाया करें। पशु-पक्षियों, फूल पत्तों से बालक को शुरू से ही बड़ा प्रेम होता है। अतः ऐसी चीजें बालक के सामने सामने अवश्य आने दें। हो सके तो घर में भी इनका प्रबन्ध कर दें। इससे आप बालक को बहुत सी

बातें सिखा सकते हैं। बालक फूल तोड़े तो बतायें कि पौधों पर लगे फूल कितने सुहावने लगते हैं। तोड़ने से जल्दी मुरझा जाते हैं। फूल तोड़ने से फल नहीं लग सकते। फूलों से ही फल लगते हैं। बालक कच्चा फल तोड़े तो समझा दें कि कच्चा फल तोड़ने से पौधा सूख जाता है, फूल-फल नहीं लगते। इसी प्रकार बालक अगर पशु-पक्षियों को मारे या सताये तो कहें कि ऐसा करना ठीक नहीं। हमारी तरह इन्हें भी कष्ट होता है। इस प्रकार जब मौका मिले पशु-पक्षी, वृक्ष पौधे आदि की बाबत बताते रहें। इससे बालक में प्रेम और सहानुभूति पैदा होगी, दूसरों को सताने की आदत उसमें नहीं पड़ेगी। यही सच्ची शिक्षा है। हृदय की शिक्षा इसे ही कहते हैं जिसका हमारे देश में सर्वथा अभाव है।

पशु पक्षी और पौधों के अलावा बालकों को सूरज, चाँद, तारे, बादल और बिजली के बारे में भी बताया करें। बालक इन सब बातों में खूब रस लेते हैं और तरह तरह के सवाल करते हैं। उनके सब सवालों का जवाब दें। जवाब न आये तो किसी से पूछ कर बतायें।

चित्रकारी—चित्र खींचना बालक की स्वाभाविक वृत्ति है। चित्र द्वारा बालक अपने आन्तरिक भावों को प्रगट करता है। बालक की इच्छानुसार उसे चित्र बनाने दें। उसके काम में आप अपनी टांग न अड़ायें। गलतियां न निकालें, गलती निकालने के बजाय असली स्थिति का अवलोकन करादें। असली चित्रकला अन्दर से पैदा होती है। ऊपर से लादी नहीं जा सकती। बालक को प्रकृति का परिचय कराएँ, अजायबघर और चिड़ियाघर की सैर करायें। घर को सुन्दर चित्रों से सजा कर रखें। अपने अनुभव से बालक खुद ही चित्र बनायगा। आप कुछ न कहें। आप तो दूर बैठे उसे देखते रहें। चित्र बनाने के लिये कुछ कागज, कुछ रंगीन पेन्सिलें और हो सके तो

भौमितिक आकृतियां दे दें। बालक जब अपना चित्र आपको दिखाये तो उसे निराश न करें, बल्कि कहें—'वाह खूब चित्र बनाया, और बनाओ।' इतना प्रोत्साहन मिलने पर बालक रोजाना नये-नये चित्र बनायेगा और आपको दिखायेगा।

स्वास्थ्य ज्ञान—स्वास्थ्य सम्बन्धी ज्ञान कराने के लिये यह जरूरी है कि आप बालक से जो कुछ कराना चाहें उसे खुद भी करें। उपदेश से कुछ काम न बनेगा। जो कुछ सिखाना हो पहले आप उसे करें। बालक आपकी नकल करेगा। आप चाहते हैं कि बालक अपने कपड़े, अपना स्थान साफ रक्खें, फलों के छिलके इधर उधर न डालें, जहाँ-तहां पेशाब न करे, तो सबसे पहले आप इन सब बातों पर अमल करें। शरीर के ज्ञान के लिये उसके प्रत्येक अंग को समझायें पहले उंगली, अंगूठा, हाथ, पैर, आंख, नाक को लें। फिर भीतर के अंग समझाने के लिये चार्ट की सहायता लें और दिमाग' दिल, जिगर आदि बतायें। इनके काम भी बतायें। जैसे—मैदा खाना हज़म करने का काम करता है। इसमें बार बार ऐसी चीजें नहीं डालनी चाहिये जो हजम न हों। दांत भी मेदे की सहायता के लिये बनाये गये हैं। अतः पहले खूब चबायें फिर निगलें जिससे मेदे को पचाने में आसानी हो।

इसके अलावा शासन-व्यवस्था तथा अन्य जीवनोपयोगी विषय खेलों, साधनों और चित्रों के द्वारा बालक के सामने रक्खे जा सकते हैं। लेकिन यह तभी हो सकता है जब आप बालक के प्रति अपने कर्तव्य को महसूस करते हों, बाल स्वभाव को खूब समझते हों, बाल-विकास के नियमों को जानते हों, बालकों से घुल मिल कर रहते हों, सब बालको को समान भाव से देखते हों, किसी की तारीफ और किसी की बुराई न करते हों, जैसा बालकों से कहते हों वैसा खुद भी करते हों। अगर

बालक बुन रहे हैं।

बालक मोन्टीसेरी साधनों द्वारा खेल रहे हैं।

यह बात नहीं है तो बालक आपसे प्रभावित न होंगे। वे आपसे दूर भागेंगे। आप उनकी शिक्षा व विकास में कुछ भी सहायता न कर सकेंगे। इसलिये बालक की शिक्षा और विकास का सवाल आपकी शिक्षा और विकास का सवाल है।

बाल्यकाल ग्रहण करने का समय है। इस समय ज्ञान के लिये बालक भूखा रहता है। हार्वर्ड यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर बोरिस सिडिस के लड़के ने छः महीने की आयु में तमाम अँग्रेजी अक्षर सीख लिये थे। दो साल की आयु में वह पाठ्य पुस्तकें पढ़ सकता था। चार साल की आयु में वह टाइपराइटर पर कहानियां टाइप कर सकता था। पांच वर्ष की आयु में उसने एक पुस्तक लिखी। निगाह मारते ही वह पृष्ट को पढ़ जाता था। और भी कितने ही आचर्श्यजनक काम वह बालक कर सकता था अमेरिका के घर घर में उसका नाम प्रसिद्ध था। माताएँ उसकी बुद्धि के चमत्कारों को देख कर और सुन कर हैरत में पड़ जाती थीं। कहने का मतलब यह है कि बालक की शक्तियों का अन्दाज़ा लगाना कठिन ही नहीं असम्भव है और इस पर मज़ा यह कि बालक जो कुछ करता है वह अपने ही प्रयत्न से करता है, अपने ही प्रयत्न से सीखता है। यह कहना कि बालक को कोई सिखाता है, या पढ़ाता है उसका अपमान करना है।

बालक स्वयं प्रयत्नशील है, स्वयं शिक्षण प्रिय है, स्वयं प्रकृतिशील है। बालक काम से जी उस समय चुराता है जब आप अपना काम उस पर लादते हैं। इसलिये सदा बालक की रुचि अरुचि का ख्याल रक्खें। अगर बालक चित्रकला में दिलचस्पी रखता है तो आप उसे संस्कृत पढ़ने के लिये हरगिज़ विवश न करें। अगर करेंगे तो आप में और बालक में अनबन हुए बिना न रहेगी। वह सदा आपसे बेज़ार

रहने लगेगा। उसकी शक्तियाँ विकृत हो जायेंगी। इसलिए अपनी रुचि बालक पर लादकर उसको अपना शत्रु न बनायें।

एक बात और—बालक की शक्तियों का दुरुपयोग न करें। उससे उतना ही काम लें जितना कि वह खुशी खुशी कर सके। भय या लालच दिखाकर आवश्यकता से अधिक काम उससे हरगिज न लें। उसे अपनी इच्छानुसार चलने दें। जब काम करने में उसका जी न हो, तो उसे कभी मजबूर न करें। आप तो काम करने के साधन जुटा दें और पूरी पूरी आज़ादी से उसे अपना विकास अपने आप करने दें। बालक आप से कुछ नहीं चाहता। केवल सुंदर और स्वस्थ वातावरण चाहता है, और चाहता है आवश्यकता पड़ने पर आपकी थोड़ी सी सहायता बस। इतना करें* और फिर बालक के चमत्कार देखें।

---

* कितने ही माता पिता बालक की प्रकृतिदत्त शक्तियों का इतना दुरुपयोग करते हैं कि वे रात दिन बालक को पढ़ा पढ़ा कर उसका कचूमर निकाल देते हैं। वे उसे न घूमने फिरने देते हैं, न खेलने कूदने देते हैं और न अपनी इच्छा के अनुसार कोई काम करने देते हैं। उनकी यह इच्छा रहती है कि उनका लड़का जल्दी से जल्दी परीक्षाएं पास करके उनके लिए रुपया कमाने लगे और उनका नाम दुनियां में चमकाए। ऐसा करना बालक के साथ घोर अन्याय और अत्याचार करना है। इसका नतीजा बहुत बुरा होता है। बड़ा होकर वह किसी भी काम का नहीं रहता। उसका सारा जीवन ही नष्ट हो जाता है।

—सम्पादक

कामवृत्ति और बालक

कामवृत्ति और सभी मनोवेगों से बलवान, उग्र तथा महत्वपूर्ण वृत्ति है। यही संसार की क्रियाशीलता और मूलप्रवर्तिका है। यही जादू का डण्डा फेरकर सृष्टि के चेतन और अचेतन तत्वों को एक सूत्र में गूंथ देती है। प्रेम और घृणा, आसक्ति और विरक्ति, प्रवृत्ति और उदासीनता आदि सब इसी से अपनी खुराक पाते हैं। यह वह प्रेरक शक्ति है, जिसे कुचला नहीं जा सकता। यह वह प्रवाह है, जिसे रोका नहीं जा सकता। सदियों से इस वृत्ति को जड़ से उखाड़ फेंकने के असंख्य प्रयत्न किये जाते रहे हैं, किन्तु सब व्यर्थ। धर्म और नीति के सभी उपदेश व प्रचार सभी इस विषय में बेकार साबित हुए हैं। कामवृत्ति का प्रवाह स्वाभाविक है। इसे अस्वाभाविक रीति से कुचलने की कोशिश करने पर यह और भी विकराल रूप धारण कर लेती है। इसलिए इस विषय में थोड़े धैर्य, उदारता और समझ से काम लेना चाहिए।

इसकी दिशा बदली जा सकती है, और उससे अधिकाधिक काम लिया जा सकता है। 'काम' का सदुपयोग मानव को विकास की चरम सीमा तक पहुंचा देता है। साहित्य-प्रेम, कला प्रेम, विज्ञान प्रेम, देश-प्रेम, विश्व प्रेम आदि इसी वृत्ति के शुद्धतम और श्रेष्ठतम रूप हैं। लेकिन साथ ही इस वृत्ति का दुरुपयोग समाज को रसातल में धकेल सकता है, सम्भवतः इसके दुरुपयोग-जन्य अकल्याण को दृष्टि में रख कर ही मानव समाज के हितैषी इसका विरोध करते हों, किन्तु इससे

'काम' की उपयोगिता किसी भी प्रकार कम नहीं हो सकती। अविकसित और अपरिष्कृत मनोवृत्तियां मनुष्य को राक्षस बना सकती हैं, इसमें तिलमात्र भी सन्देह नहीं। आवश्यकता केवल उनके सदुपयोग की है।

'काम' का मनुष्य के साथ गहरा और अटूट सम्बन्ध है। यह मनुष्य की नस नस में समाया और रमा हुआ है। 'काम' मनुष्य की स्वाभाविक और प्राकृतिक आवश्यकता है, खुराक है। 'काम' के बिना दुनियाँ का कोई भी काम संभव नहीं। सचमुच, काम ही सृष्टि का आधार है। 'काम' ही सृष्टि का सञ्चालन करता है। मनो विश्लेषण के प्रवर्तक फ्रायड ने ठीक ही कहा है कि "मनुष्य की प्र येक क्रिया में काम-भावना विद्यमान रहती है।" इस वृत्ति के बिना किसी भी काम में प्रवृत्ति नहीं हो सकती। इसके बिना मनुष्य अपाहिज और अपंग है। इसीलिए इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इसकी उपेक्षा करना जीवन की उपेक्षा करना है।

लेकिन हमने तो 'कामवृत्ति' को सदा पाप और घृणा की ही दृष्टि से देखना सीखा है। 'काम' का नाम सुनते ही हमारे क्रोध का पारा एकदम चढ़ जाता है। कामवृत्ति को हेय समझने का एक सबसे भयंकर दुष्परिणाम यह हुआ है कि मनुष्य शरीर से घृणा करनी सीख गया है। इसे दुर्गुणों की खान समझने लग गया है। वह रात-दिन इसे कोसता रहता है। आठों पहर मृत्यु की कामना करता रहता है। ऐसा मनुष्य अपना, समाज का, देश का या विश्व का क्या हित कर सकता है? उसका जीना या न जीना बराबर है। शरीर से घृणा करने के कारण ही हमारे देश की आज यह दुर्दशा हो गई है। कामवृत्ति का बलात् दमन करने का दूसरा कुपरिणाम यह हुआ है कि मनुष्य को स्वाधीनता पूर्वक इस वृत्ति के परिष्कार का अवसर नहीं मिलता और वह लुक छिपकर उलटे सीधे मार्ग से अपनी काम-विषयक जिज्ञासा और उत्तेजना

को शान्त करने का प्रयत्न करने लगा है। यही कारण है कि हमारा आज का जीवन अनेक रोगों और विकृतियों का घर बन गया है। हमारे साहित्य, संगीत कला-कौशल, विवाह-शादियों, सिनेमा-नाटकों, खेल-तमाशों, होटलों-धर्मशालाओं आदि सभी क्षेत्रों और स्थानों में अश्लीलता घुस गई है। सभी जगह विलासिता का दौर-दौरा है। 'काम' के प्रति संकुचित भावना ने मनुष्य को बड़ा ढोंगी बना दिया है। हमने खूब देखा है कि जिनको बड़ा पारसा कहा जाता है, जिनकी समाज में बड़ी प्रतिष्ठा है, वही काम-विकृति के बुरी तरह शिकार रहते हैं। धार्मिक शिक्षण संस्थाओं में पढ़ने वाले विद्यार्थियों की दशा तो और भी दयनीय है। उन पर इतना कठोर नियन्त्रण रखा जाता है, इतने अप्राकृतिक बन्धनों में उन्हें रखा जाता है, धर्म और ब्रह्मचर्य का इतना उपदेश उन्हें दिया जाता है कि कुछ न पूछिए। लेकिन उनकी अन्दरूनी हालत देखकर दिल दहल जाता है। जबरन और अनुचित रूप से दबाई हुई कामवृत्ति को वे न जाने किन किन अनुचित और अप्राकृत्तिक उपायों द्वारा शान्त करते हैं। उन सब बातों पर प्रकाश डालने का वह स्थान नहीं है। हमें तो यह दिखलाना है कि हमारी इस अज्ञानपूर्ण दृष्टि से बालकों के जीवन पर कितना घातक प्रभाव पड़ता है ?

अन्य रोगों और विकृतियों की भांति काम-विकृति की बुनियाद भी बाल्यावस्था में ही रखी जाती है। जिस दृष्टि से हम बालकों की काम-चेष्ठाओं को देखते हैं और उनके सवालों का जवाब देते हैं, वह इतनी विकृत और दूषित हैं कि बालकों में काम-विकृति का बीजारोपण हुए बिना रह ही नहीं सकता। जब तक हम काम के वास्तविक मंगल रूप को न समझेंगे, तब तक हम अपने दकियानूसी धार्मिक, नैतिक और सामाजिक विचारों और धारणाओं को तिलाञ्जलि न देंगे, जब तक कामवृत्ति पर हम पाप और घृणा का पर्दा डालते रहेंगे, जब तक हम

बालकों की काम-विषयक जिज्ञासा को डण्डे के ज़ोर से दबाते और कुचलते रहेंगे जब तक हम अन्य विज्ञानों की तरह 'काम' को भी एक विज्ञान नहीं समझेंगे, तब तक काम-विकृति की बुनियाद बाल्यावस्था में ही पड़ती रहेगी।

प्रायः माता-पिता ऐसा मानते हैं कि कामवृत्ति युवावस्था में ही जाग्रत होती है, बचपन में नहीं। उनका यह विचार एकदम भ्रम-मूलक है। काम वृत्ति बालक में जन्म से ही होती है। शोलडर ने ठीक ही कहा है कि मनुष्य में 'काम' "प्रथम श्वास से प्रारम्भ होता है और अन्तिम श्वास तक रहता है।" इसलिये यह आसानी से कहा जा सकता है कि बालक भी काम-वासना रखता है। अंगूठे का चूसना इस बात का सबूत है कि अन्यान्य भाग और होठों का लुआव भी बच्चे को वैसा ही सुख देते हैं जैसा कि जननेन्द्रिय की उत्तेजना।

सबसे पहले बालक अपनी कामवासना मुँह के द्वारा शान्त करता है। यही कारण है कि बालक के मुँह में जो चीज़ आती है वह उसे फौरन चूसने लगता है। ऐसा करने से उसे सुख मिलता है। इसलिये अंगूठा छुड़ाने में जबरदस्ती नहीं करनी चाहिये। यह विश्वास रखना चाहिये कि तृप्ति हो जाने पर बालक आप ही अंगूठा चूसना छोड़ देगा। अगर अंगूठा छुड़ाने में हमने मारपीट या लालच से काम लिया तो यह आदत और भी बढ़ जायेगी और बालक बहुत बड़ा होने पर भी अंगूठा चूसता रहेगा। मोहन छः वर्ष का हो जाने पर भी अंगूठा चूसता था। अंगूठे पर कुनीन लगाने व कसकर कपड़ा बांध देने पर भी अंगूठा चूसना नहीं छोड़ता था। जबरदस्ती करने पर तो यहां तक होता है कि बालक डर के मारे अंगूठा चूसना छोड़कर हस्त-मैथुन करना शुरू कर देता है। इस तरह काम विकृति की बुनियाद पड़

जाती है और इसके लिये माता-पिता ज़िम्मेदार हैं। जबरन माता दूध छुड़ाने का भी यही नतीजा होता है।

मुँह की तरह मलद्वार भी बच्चे की कामवासना की तृप्ति का साधन है। मल निकालने और रोकने में बच्चे को सुख का अनुभव होता है। यही कारण है कि बालक अपने मल मूत्र को बहुत पसन्द करता है। उसे देखकर बड़ा खुश होता है। उससे खेलता है। हाथ पांव ख़राब कर लेता है, और कभी कभी तो खा तक जाता है। मल-मूत्र को अपने शरीर की चीज होने के कारण बड़ा क़ीमती समझता है और उसे प्यार करता है। बालक की इन हरकतों को देखकर माता पिता बड़े बिगड़ते हैं। लेकिन उनका बिगड़ना ठीक नहीं। अगर बालक को तंग न किया जाय तो वह खुद ही थोड़े दिनों में मल-मूत्र को छूने और उससे खेलने की आदत छोड़ देगा। अगर दबाव से काम लिया तो नतीजा बुरा होगा। यह आदत और भी पक्की हो जायेगी। बालक छिप कर मल-मूत्र करने लगेगा और अपनी जिज्ञासा को तृप्त करेगा। बालक को रेत मिट्टी में खेलने देने से यह आदत छूट जाती है। मिस्टर नील ने लिखा है कि 'बालक जब पहले पहल मेरे स्कूल में दाखिल होते हैं तो उनमें से कितनों को ही मल-मूत्र देखने का बड़ा शौक होता है। मैं उन्हें इस काम से कतई नहीं रोकता। उलटा मल-मूत्र के बारे में उनसे खूब दिल खोलकर बातें करता हूँ। इसका नतीजा यह होता है कि पांच सात दिन में दिल भर जाने पर बालक मल-मूत्र को देखना या इसके बारे में बातें करना खुद-बखुद छोड़ देते हैं।' अगर बहुत समय तक बालक इस आदत को न छोड़ें तो असली कारण का पता लगाकर बड़े धैर्य और शान्ति से यह आदत छुड़वानी चाहियें।

मुँह और मलद्वार के बाद बालक अपनी काम वासना जननेन्द्रिय द्वारा तृप्त करता है। वह अपनी जननेन्द्रिय को छूता है और दबाता

है यह आदत प्रायः सभी बच्चों में होती है। साधारणतया इस आदत को बच्चा खुद ही छोड़ देता है। इससे डरने घबराने की आवश्यकता नहीं। लेकिन बाल-मन को न समझने वाले माता पिता इसे गन्दी आदत समझते हैं। इसलिये बालक जब अपनी जननेन्द्रिय को छूता है तो वे बुरी तरह उसका हाथ पकड़ कर खींच लेते हैं और साथ ही फटकार भी लगाते हैं। इससे बालक इस इन्द्रिय को खराब और घृणित समझने लगता है। इस प्रकार माता-पिता का अपराधी मन बालक में जननेन्द्रिय के प्रति पाप भावना पैदा कर देता है। कई बार ऐसा होता है कि इन्द्रिय में खुजली होने के कारण बालक उसे छेड़ता है। दूसरे अंगों की तरह अगर इस अंग को भी स्वच्छ रखा जाये तो इन्द्रिय का छेड़ना बड़ी आसानी से बन्द हो जाय। पेशाब-पाखाने के बाद बालक के इन अंगों को भली भांति धोकर खूब अच्छी तरह पोंछ देना चाहिये। इतना करने पर भी खुजली आती रहे तो खुजली नाशक कोई दवाई लगानी चाहिए। खुजली होने से बच्चे को हस्त मैथुन की आदत पड़ जाती है। यह कसूर माता-पिता का है, जो बालक के इस अंग को स्वच्छ नहीं रखते।

बालक में जिज्ञासा वृत्ति बड़ी तीव्र होती है। वह हर एक बात को जानना चाहता है। क्यों, कैसे और कहां का पता लगाए बिना उसे चैन नहीं पड़ती। इसलिए बालक जब बोलने लगता है तो अपने जन्म, भाई-बहिन के भेद, माता-पिता के सम्बन्ध तथा अपने गुप्त अंगों के बारे में सवाल पूछने लगता है। यह आदत प्रायः सभी बालकों में होती है। लेकिन माता पिता का अपराधी मन उन्हें बालक के उन निर्दोष प्रश्नों का स्पष्ट और ठीक उत्तर नहीं देने देता। कितने ही सवालों को वे हंसी में उड़ा देते हैं। कितने ही सवालों का उलटा-पुलटा और गलत-सलत जवाब दे देते हैं। कितने ही माता-पिता ऐसे सवालों का जवाब डण्डे

और चपत, घुड़की और डांट से देते हैं। कौन नहीं जानता कि बच्चों की पैदाइश के बारे में माता-पिता कितना अण्ट-शण्ट और झूठा जवाब देते हैं। उनका जवाब आम तौर पर यही होता है कि "तुझे आसमान से ईश्वर ने भेजा है, या तेरी नानी ने पारसल में तुझे यहां भेजा है।" ऐसे जवाबों से बालक की जिज्ञासा शान्त होने के बजाय और भी तीव्र हो उठती है। वह गली के लड़कों या नौकरों से इन सवालों का जवाब पूछता है। उनसे भी प्रायः अधूरे और ग़लत जवाब ही मिलते हैं। बालक के मन पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। वह जटिल बन जाता है। चोरी करने और झूठ बोलने लगता है। छल कपट से काम लेने लगता है। दिन में ही स्वप्न देखने लगता है। किसी काम में उसका मन नहीं लगता। एक उदाहरण से यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जायगी।

पांच छः साल की एक लड़की थी। अच्छे और धार्मिक घराने में पैदा हुई थी। उसे चोरी करने की आदत पड़ गई। माँ को बहुत दुःख हुआ। वह उसे एक मनो-विश्लेषक के पास ले गई। मनो-विश्लेषक से पता चला कि लड़की चोरी करना इसलिये सीख गई थी कि उसकी माता ने बालकों के जन्म के बारे में उसके सवालों का जवाब ठीक ठीक नहीं दिया था। वह यह कह कर लड़की को टाल दिया करती थी कि ईश्वर बच्चों को स्वर्ग से यहां भेजता है। लड़की को अपने सवाल का ठीक जवाब मिलने और माता के काम-सम्बन्धी दृष्टि कोण में परिवर्तन होने से लड़की ने चोरी करना छोड़ दिया। छल-कपट करना और झूठ बोलना भी छूट गया। और वह अपना काम मन लगाकर करने लगी।

काम वृत्ति के प्रति हमारा जो दृष्टिकोण है, उससे बालक पर बहुत बुरा असर पड़ता है। वह जीवन भर दुःखी और चिन्तित रहता

है। विवाह होने के बाद भी उसकी काम-वासना मिटने नहीं पाती। डाक्टर 'मिलर' ने लिखा है—कि साढ़े चार साल की लड़की ने दो बिल्लियों को काम-क्रीड़ा करते देखा। लड़की दौड़ी दौड़ी मां के पास गई और कहा—"माँ! माँ! बिल्ला बिल्ली को तंग कर रहा है, आप चलकर उसे छुड़ा दें।" यह सुनते ही मां ने नाराज़ होकर और कड़क कर कहा—"बैठ जाओ, अच्छी लड़कियां ऐसी क्रियाओं की ओर ध्यान नहीं दिया करतीं।' लड़की के अज्ञात मन* (उपचेतना) पर इस मामूली सी घटना का इतना गहरा असर हुआ कि सत्ताइस साल बाद यही घटना लड़की को स्वप्न में दिखाई दी। काम-शिक्षा देने का माँ को बड़ा सुनहरी मौका मिला था। लेकिन अपनी अज्ञानता के कारण शिक्षा देने के बजाय उसने लड़की के मन में 'काम' के प्रति पाप-भावना पैदा करदी।

सच बात तो यह है कि हमें बालकों की प्रत्येक क्रिया में काम-

---

* नवीन मनोविज्ञान ने मन के दो भाग किये हैं—ज्ञात और अज्ञात। जिन विचारों, भावनाओं आदि पर मनुष्य का अधिकार रहता है, उसे ज्ञात मन कहते हैं। इसके विपरीत उन कटु और अरुचिकर अनुभवों को जिन्हें ज्ञात मन न मालूम कब और कैसे भूल जाता है, अज्ञात मन कहते हैं। दूसरे शब्दों में माता पिता द्वारा दबाई और कुचली हुई इच्छाएँ, भावनाएँ रुचियां आदि ही अज्ञात मन हैं। समाज में फैली हुई भयंकर विकृतियां और मानसिक रोग बचपन में दबाई हुई इच्छाओं का ही परिणाम हैं। अज्ञात मन ज्ञात मन की अपेक्षा बहुत बड़ा होता है। मन बर्फ़ वा उस चट्टान के समान है जिसका बहुत थोड़ा भाग पानी के ऊपर और अधिकांश भाग पानी के नीचे होता है। ऊपर के भाग को ज्ञात मन और नीचे के भाग को अज्ञात मन समझिए। —लेखक

विकृति की गन्ध आने लगती है। यही कारण है कि जब बालक नंगे फिरते हैं, किसी मर्द या औरत के बिलकुल नंगे बदन को देख लेते हैं, या कभी वर-वधू का खेल खेलने लगते हैं, अथवा राजा-रानी का नाटक करने लगते हैं तो हम उनकी इन क्रियाओं को फूटी आंखों भी नहीं देख सकते। उसी दम नियम बना देते हैं—"नंगे मत फिरो, कोई नंगा हो तो उसे मत देखो, वर-वधू या राजा-रानी के गन्दे खेल मत खेलो। ऐसा करोगे तो सख्त सज़ा मिलेगी।" ऐसे कड़े नियम बना देने से बालकों की जिज्ञासा और भी बढ़ती है। वे छुक छिप कर सब कुछ करते रहते हैं। माता-पिताओं के गुप्त अंगों को, उनकी काम-चेष्टाओं को, छिपे छिपे देखने की कोशिस करते हैं। मनो विज्ञान का यह साधारण नियम है कि जिस काम से बालक को हम रोकते हैं, उसे वे अवश्यकरते हैं।

इसी प्रकार जब बालकों में हस्त-मैथुन की आदत पड़ जाती है, तो हमारे क्रोध, रोष और चिन्ता का ठिकाना नहीं रहता। प्रायः सभी बालकों में यह आदत पड़ जाती है। दो-तीन साल के बालक भी हस्त-मैथुन करते हैं और क्रियाओं की तरह इस क्रिया को भी जिज्ञासा तृप्त हो जाने पर बालक स्वतः छोड़ देते हैं। लेकिन अगर जबरदस्ती इस आदत को छुड़ाया जाए, या बालकों के आस पास का वातावरण ठीक न हो तो बालक वर्षों तक इस आदत के शिकार बने रहते हैं। इस आदत को छुड़ाने का सबसे उत्तम उपाय है इसके असली कारणों को मालूम करके धैर्य और शान्ति से उन्हें दूर करना। यह आदत बालक अपने रिश्तेदारों से, मेहमानों से, दुश्चरित्र शिक्षकों से, उत्सवों से, विवाह-शादियों से, बरातों से, नौकरों से, अश्लील खेल-तमाशों से, गली-मुहल्ले के साथियों से माता-पिता के कठोर नियन्त्रण से सीख जाते हैं। मेरे आश्चर्य और दुःख का ठिकाना न रहा, जब एक बालक ने काँपते काँपते, डरते डरते बताया कि उसके मामा ने उसे यह आदत सिखाई

है। इसके अलावा एकान्त में निठल्ले और उदास पड़े रहने, खुली हवा में खेलने-कूदने और अपने भावों को प्रकट करने का मौका न मिलने, पेट में कीटाणुओं के हो जाने, नींद न आने पर भी सोने के लिए मजबूर किये जाने, जननेन्द्रिय के गन्दा रहने, मन में पाप-भावना पैदा हो जाने, जिज्ञासावृत्ति के कुचले जाने, जबरन अंगूठा चूसने और माता का दूध छुड़ाने आदि के कारण भी बालकों में यह लत पड़ जाती है। इसलिए मार-पीट या पाप का भय दिखाकर इस आदत को छुड़ाने का प्रयत्न करना परले दर्जे की हिमाकत है, बालकों के जीवन से खिलवाड़ करना है। इससे तो यह आदत घटने के बजाय और भी बढ़ जाती है। पीटने वाले से घृणा हो जाने के कारण बालक उसे चिढ़ाने के लिए, उसका ध्यान अपनी ओर खींचने के लिए बार बार इस क्रिया को करते हैं। डाक्टर भोल ने तो यहां तक लिखा है कि सजा से पिटने वाले, पीटने वाले और देखने वाले सभी के अन्दर काम-उत्तेजना पैदा होती है। डाक्टरों, मनोवैज्ञानिकों और अनुभवों ने सिद्ध कर दिया है कि हस्त-मैथुन से बालकों को इतनी हानि नहीं होती, जितनी हानि कि उन्हें इस आदत से पैदा होने वाली मानसिक चिन्ता और पाप भावना के कारण होती है। यह पाप-भावना बालकों के शरीर और मन को इतनी हानि पहुंचाती है कि जिसकी कल्पना-मात्र से दिल दहल उठता है। बालक अन्दर ही अन्दर घुलते रहते हैं। डरते रहते हैं। आत्म-विश्वास खो बैठते हैं। अपने को तुच्छ समझने लगते हैं। उनकी इच्छा शक्ति नष्ट हो जाती है। रात को गहरी नींद नहीं आती। सोते-सोते उठ बैठते हैं। उन्हें ऐसा लगता है कि यमदूत उन्हें नर्क में ले जायगा। एक शब्द में, बालक अपनी जिन्दगी से बेज़ार हो उठते हैं। उन्हें कुछ भी अच्छा नहीं लगता। वे सबसे घृणा करने लगते हैं। बड़े होने पर अनेक रोगों के शिकार हो जाते हैं।

बालकों की इस दयनीय दशा के लिए हम बड़े ही जिम्मेदार हैं। हमारी ही नासमझी के कारण बालक इन आदतों के शिकार होते हैं। हमारी ही विकृत दृष्टि बालकों में विकृति पैदा करती है। हमारा ही अज्ञान बालकों में 'काम' के प्रति पाप-भावना को जन्म देता है। हमारा अपराधी मन ही बालक को अपराध के गड्ढे में धकेलता है। हमारा दूषित दृष्टिकोण ही बाल्यावस्था में पागलपन जैसे भयंकर रोगों की बुनियाद डालता है। कामवृत्ति को पाप और घृणा की दृष्टि से देखने का यही नतीजा निकल सकता है। अगर हम बालकों को समय से पहले मृत्यु के मुंह में जाने से बचाना चाहते हैं, अगर हम बालकों का वास्तविक विकास चाहते हैं, अगर हम बालक को दानव न बनाकर सच्चा मानव बनाना चाहते हैं तो हमें अपने दूषित दृष्टिकोण में जल्दी से जल्दी क्रान्ति पैदा करनी होगी।

इसके लिये हम कुछ उपयोगी और अनुभूत सुझाव आपके सामने रखते हैं। इन पर अमल करने से आप भी सुखी होंगे और आपके बालक भी। समाज का भी बड़ा हित होगा। उसे स्वस्थ, सच्चे और सुलझे हुए नागरिक मिलेंगे जिनका आज सर्वथा अभाव है।

१—सबसे पहले अपने अपराधी मन को शुद्ध करें। कामवृत्ति को पापों का मूल समझना छोड़ दें। इसे घृणा की दृष्टि से देखना बन्द करदें। इसके असली और सच्चे रूप को समझने का प्रयत्न करें। अपने मन को अच्छी तरह टटोलें और अपने बालकों को अपने पापों के लिये प्रायश्चित्त करने के लिये मजबूर न करें।

२—जन्म तथा जननेन्द्रिय सम्बन्धी बालकों के सवालों का जवाब अन्य विषयों के सवालों के जवाब की तरह बिलकुल स्पष्ट और बिलकुल सही सही देना सीखें। जवाब न आते हों तो किसी अनुभवी मित्र या मानस-शास्त्री से मालूम करें। जवाब देते समय किसी प्रकार

का संकोच, किसी प्रकार की झिझक, किसी प्रकार की मुसकराहट या उत्तेजना न दिखाएँ। जवाब देते समय बालकों की उम्र, उनके पूर्व अनुभव, उनकी समझ आदि बातों का खयाल रखें। जवाब नपे-तुले होने चाहिये न बहुत लम्बे और न बहुत छोटे। भाषा बिल्कुल सीधी और सरल हो। काम-शिक्षा देने में जल्दी न करें। अन्य विषयों की तरह काम शिक्षा भी धीरे धीरे और आयु के अनुसार होनी चाहिए। एक ही दफ़ा सब कुछ बालक के दिमाग में न भर दें। कुछ बालक बड़े शर्मीले होते हैं। उन्हें सवाल पूछने के लिए प्रोत्साहित करें। फिर भी अगर वे न पूछें तो आप खुद ही जन्म आदि के बारे में उन्हें सब आवश्यक बातें बता दें। इधर उधर भटकने का मौका न दें।

३—बालकों की निर्दोष भाव से की गई काम चेष्टाओं को घृणा और पाप की दृष्टि से देखकर काम के प्रति उनके मन में घृणा और पाप के भाव पैदा न होने दें। इन क्रियाओं के विषय में रात दिन चिन्तित न रहें। आपके चिन्तित रहने से बालक अपनी क्रियाओं को पाप समझने लगेंगे। और अन्दर ही अन्दर घुल घुल कर दुखी होते रहेंगे। बालकों की क्रियाओं को अपनी दृष्टि से न देखकर उन्हीं की दृष्टि से देखें। उनकी दृष्टि में जो खेल है वह आपकी दृष्टि में अपराध हो सकता है।

४—बालकों की गुप्त इन्द्रियों को खराब समझने की आदत छोड़ दें। शरीर के दूसरे अंगों की तरह उन्हें भी स्वाभाविक दृष्टि से देखें। इस बात का सदा खयाल रखें कि वे गन्दी न रहें, बिलकुल स्वच्छ रहें। इन्द्रिय को गन्दा रहने से हस्त मैथुन की आदत पड़ जाती है।

५—बालकों के शरीर के सब अंगों के नाम, उनका कार्य,

उनकी उपयोगिता तथा उनके दुरुपयोग से होने वाली हानियों का ज्ञान खूब अच्छी तरह करा दें। यह भी बता दें कि शरीर के सब अंगों की तरह गुप्त इन्द्रियों को भी साफ रखना कितना जरूरी है।

६—बालकों को काम-वृत्ति और काम-जिज्ञासा को जबरन मार पीट कर, लालच देकर या धर्म नीति के उपदेश झाड़ कर दबाने की भयंकर गलती भूल कर भी न करें। बालक का अज्ञात मन उस बात में अधिक रुचि रखने लगता है जिससे उसको रोका जाता है। आपका ध्यान आकर्षित करने के लिए, आपको चिढ़ाने के लिए, आपसे बदला लेने के लिए बालक इन क्रियाओं में और अधिक रस लेने लगते हैं।

७—बालकों से यह कभी न कहे कि इन क्रियाओं के करते रहने से वे बुद्धू, गन्दे या नालायक हो जायेंगे। सदा याद रखें कि बालकों से आप जैसा कहेंगे वे वैसे ही बन जायेंगे। आपकी हर एक बात से बालकों के मन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। आप उन्हें पागल कहेंगे वे पागल बन जायेंगे।

८—बालकों के साथ मित्र की तरह घुल मिल कर रहें। उनके विश्वास पात्र बनें। उन्हें इतना निर्भय करदें कि अपने दिल की कोई भी बात वे आपसे न छिपाएँ। जो कुछ पूछना हो, आपके पास दौड़े चले आएँ। भारी से भारी अपराध को भी आपके सामने रखते हुए जरा भी न हिचकिचाएँ। जब तक आपके बालक आपसे डरते रहेंगे आप उनका कुछ भी सुधार नहीं कर सकेंगे।

९—बालकों को गन्दे खेल, तमाशों, वाहियात उत्सवों, व्यर्थ के मेलों ठेलों और बरातों आदि में हरगिज न ले जायें। उनसे झूठा लाड चाव न खुद करें और न दूसरों को करने दें। बालकों का चुम्बन भी न करें। दूसरों को भी ऐसा न करने दें। बालकों के

साथियों पर देख-रेख रखें। बालकों के साथी गन्दे हैं, तो आपके बालक भी उनसे गन्दगी सीख जायेंगे।

१०—बालकों को रात के समय अपने पास हरगिज न सुलायें। उन्हें अलहदा कमरे में सुलायें। आपकी चेष्टाओं का बालकों के अज्ञान मन पर बड़ा घातक प्रभाव पड़ता है। आपकी इस लापरवाही से वे कितनी ही कुचेष्टाएं सीख जाते हैं। माता-पिता का खेल खेलना वे आप से ही सीखते हैं। इससे कितने ही अप्राकृतिक दोष भी बालकों में आ जाते हैं।

११—बालकों को तंग जांघिया न पहनाएं। इससे इन्द्रिय के साथ रगड़ खाने से हस्त मैथुन की आदत पड़ सकती है। बालक नंगे रहना चाहें तो नंगे रहने दें। नंगे रहने से उनकी बहुत सी जिज्ञासाएं तृप्त हो जाएंगी। भाई-बहन का भेद समझने में उन्हें दिक्कत न होगी वे गुप्त इन्द्रियों से घृणा करना न सीखेंगे।

१२—बालकों को अपने जैसा चटपटा, चरपरा और अवैज्ञानिक ढंग से बनाया हुआ तत्वहीन भोजन न दें। बालकों को सदा सादा और स्वास्थ्यप्रद भोजन दें। जब तब खाने की आदत न डालें। साधारण-तया समय पर ही भोजन करने की आदत डलवाएं।

१२—दो साल के होते हुए बालकों को बता देना चाहिए कि लड़का लड़की नहीं बन सकती और लड़की लड़का नहीं बन सकता! लाड प्यार में आकर कितने ही माता-पिता लड़की को लड़का कह कर बुलाते हैं, इससे बड़े होने पर लड़की के मन में बड़ी हलचल मचती है। वह बड़ी दुखी रहने लगती है।

१४—लड़के-लड़कियों में कतई भेद-भाव न करें। दोनों को समान दृष्टि से देखें। घरों में प्रायः लड़कियों को बहुत घटिया समझा जाता है। लड़कियां इस पक्षपात को अन्दर ही अन्दर बड़ा महसूस

करती हैं। वे सोचने लगती हैं कि लड़कों जैसी जननेन्द्रिय का अभाव ही उनकी बेकदरी का कारण है। इसलिए उनका अज्ञात मन लड़कों जैसी जननेन्द्रिय की इच्छा करने लगता है, जिससे वे बड़ी दुखी रहने लगती हैं, अपने को धिक्कारती हैं और हीन समझने लगती हैं।

१५—बालकों को काम-चेष्टाओं से बचाने के लिए उनके खेलने-कूदने, नाचने गाने तथा अपनी मन-पसन्द प्रवृत्तियां करने की समुचित व्यवस्था कर दें। इससे बालकों का ध्यान अपने शरीर की ओर न जाकर खेल-कूद में लगा रहता है। प्रातः उठने से लेकर रात को सोने के समय तक का प्रोग्राम ऐसा होना चाहिये कि बालक अपनी इच्छानुसार अपने मन चाहे कामों में संलग्न रहें। स्वस्थ, प्रसन्न और काम में रत रहने वाले बालकों को बुरी आदतों का खयाल तक नहीं आता। वे दिन-रात अपने विकास में लगे रहते हैं। निःसन्देह रुचिकर काम ही कामवृत्ति को ठीक ठीक विकसित करता है, और इसे विकृत नहीं होने देता।

१६—यह विश्वास रखें कि अन्य समस्याओं* की तरह काम-समस्या को भी बालक ही हल कर सकता है। धर्म और नीति के जोरदार उपदेशों से यह समस्या कभी हल नहीं होगी। अगर बचपन में बालक की कामवृत्ति को दबाने या कुचलने के बजाय उसका समुचित विकास हुआ है तो भविष्य में काम-समस्याओं के उपस्थित होने की संभावना ही नहीं रहेगी। बाल्यावस्था में पड़ी हुई मजबूत बुनियाद को भूकम्प के धक्के भी नहीं हिला सकते।

---

* इन समस्याओं पर पहले प्रकरण में प्रकाश डाला गया है।

बालक और अनुशासन

अनुशासन की समस्या वास्तव में बालक बनाम अनुशासन की समस्या है। यह समस्या इस प्रश्न पर विचार करने से बड़ी सुगमता से हल हो जाती है कि हम बालक को अधिक महत्व देते हैं या अनुशासन को ? दूसरे शब्दों में हमको यह विचार करना है कि हमारी दृष्टि में अधिक मूल्य किसका है—बालक का या अनुशासन का ? इस प्रश्न का उत्तर मिलते ही हमारी समस्या का पूर्ण समाधान हो जायेगा। उदाहरणार्थ, उन दो व्यक्तियों के दृष्टिकोण तथा विचारों में बड़ा अन्तर होगा जो सेना के लिये युद्ध कला की शिक्षा के समय पहले मनुष्य की महत्ता मानते हैं, अथवा पहले युद्ध-साधनों की।

आजकल प्रत्येक शिक्षक या माता-पिता, जिसे अपने महान् कर्तव्य का ख्याल है, तथा जिसमें इसके लिये आवश्यक आदर्शवादिता और चरित्र की दृढ़ता विद्यमान है, अनुशासन की अपेक्षा बालक को अधिक महत्व देता है। इसका क्या कारण है ? यही कि उसकी सम्मति में बालक सर्वश्रेष्ठ अनुशासन की अपेक्षा कहीं अधिक मूल्यवान है। वह जानता है कि बालक का विकासोन्मुख जीवन कायदे कानूनों की अपेक्षा कहीं बहुमूल्य है। उसे अनुशासन की कठोर रस्सियों में बांध कर नहीं रखा जा सकता।

इसका यह तात्पर्य नहीं कि वह शिक्षाक्रम में अनुशासन का महत्व

स्वीकार नहीं करता। उसे अनुशासन की महत्ता ज्ञात है, परन्तु दूसरे ही प्रकार से। उसे योगियों और सन्तों की इस वाणी में पूर्ण विश्वास है कि जीवन स्वयं एक संगीत है, तथा पूर्ण विकास के लिये बालक को इसी संगीत की लय के अनुसार चलना सीखना होगा। विश्व संगीत की इस ध्वनि के अनुसार व्यक्ति का स्वर सन्धान ही अनुशासन कहलाता है। भाव यह है कि उसकी दृष्टि पूर्ण जीवन पर है, न कि इसके किसी एक अंग पर। चाहे हम उसे किसी नाम से पुकारें—देश प्रेम, साम्राज्यवाद, स्कूल अथवा वंशगत गौरव। इसलिये शिक्षक या माता-पिता को सब से पहले अपने अन्दर एक कलाकार जैसी स्पिरिट पैदा करनी चाहिये। कलाकार वही है जो प्रत्येक क्षण अपने हृदय में विश्वात्मा का दर्शन करता है और कार्य विशेष में विश्व संगीत की लय को सुनता है। यदि बालक का अभिभावक या शिक्षक ऐसा करने में असमर्थ है, यदि उसमें अपने इस कर्तव्य को एक धार्मिक कृत्य समझने की निष्ठा नहीं है, तो उसके प्रतिक्षण अपने पथ से विचलित हो जाने की आशंका बनी रहेगी। इस प्रकार का शिक्षक अथवा अभिभावक बालक की स्वतन्त्र आत्मा को अनुशासन की शृङ्खलाओं*

---

* बालक के महत्व को न समझने के कारण आज तो घरों और स्कूलों में प्रायः बालक की अपेक्षा अनुशासन को ही अधिक महत्व दिया जाता है। उसे अनुशासन की शृङ्खलाओं में जकड़ कर रखा जाता है। हम रोजाना देखते हैं कि अनुशासन के नाम पर माता-पिता और शिक्षक बालक पर घोर अत्याचार करते हैं। बालक जब उनकी जा-बेजा आज्ञाओं का पालन नहीं कर सकता, उनकी इच्छाओं और धारणाओं के अनुसार नहीं चल सकता, उनके सामने कभी अपने दिल के उन भावों को प्रकट करने की गुस्ताखी कर बैठता है,

में बांधने का प्रयत्न किये बिना नहीं रहेगा। ऐसी दशा में बालक का

जो उन्हें पसन्द नहीं रहते, तो अपनी झूठी शान कायम रखने के लिये अनुशासन के नाम पर वे बुरी तरह उस पर बरस पड़ते हैं और जब तक अपनी मनमानी नहीं करवा लेते, तब तक चैन से नहीं बैठ सकते।

कठोर अनुशासन का बालक पर प्राणघातक असर पड़ता है। इससे बालक का व्यक्तित्व नष्ट हो जाता है। जबरदस्ती कराये गये कामों को छोड़ कर वह और कुछ करने के कतई काबिल नहीं रहता। दूसरों के इशारों पर नाचते रहना ही उसका परम कर्तव्य बन जाता है। अपने आप फैसला करके यथोचित काम करने की क्षमता ही उसमें नहीं रह जाती, जो अनुशासन का वास्तविक ध्येय है और होना चाहिए। वह जो कुछ करता है, डर से करता है। बड़ों के सामने तो सब काम ठीक ठीक करता है, लेकिन उनकी आंखों से ओझल होते ही उनकी सब आज्ञाओं और नियमों को बालाये ताक रख कर अपने दिल का गुब्बार निकालता है। ऊपर से लादे हुये अनुशासन का और कुछ नतीजा हो ही नहीं सकता। इससे अच्छी और स्थाई आदतों का विकास हो ही नहीं सकता। कितने ही बालकों में बड़े होने पर कठोर अनुशासन की प्रतिक्रिया अत्यन्त घातक होती है। कमालपाशा और स्टालिन के उदाहरण आंखें खोलने वाले हैं। दोनों के अभिभावक इन दोनों को कट्टर धार्मिक बनाना चाहते थे। जब तक अभिभावकों का कठोर अनुशासन रहा, तब तक ये धर्म कर्म करते रहे। धार्मिक शिक्षा लेते रहे। लेकिन अंकुश के उठते ही, स्वतन्त्र होते ही दोनों ने धर्म की धज्जियां उड़ादीं। धर्म के कट्टर शत्रु बन गये। आज अपने चारों ओर जिस आतङ्कवाद को हम देख रहे हैं, वह इस कठोर अनुशासन की ही देन है।

—सम्पादक

उससे इसके सिवाय और सम्बन्ध ही क्या हो सकता है कि वह उसे एक ऐसा जेलर समझे जो कि अपने कैदी को झनझनाती ज़न्जीरों में कसे रखता है। बालक ऐसे अभिभावक या शिक्षक को अपनी स्वतन्त्रता का अपहरण करने वाले के रूप में ही जान सकता है। एक बार ऐसी अवाञ्छनीय स्थिति उत्पन्न हो जाने पर अनुशासन, अनुशासन नहीं रह जाता, वह तो जुल्म बन जाता है। विकसित होते हुये बालक की आत्मा को प्रतिक्षण कुचलता रहता है।

परन्तु इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि कलाकार की सी भावना रखने वाले शिक्षक मिलते ही कहां हैं, अथवा इस प्रकार की शिक्षा केवल एक आदर्श अवस्था में ही संभव हो सकती है। अतएव हमको पूर्ण आदर्श एवं आदर्श के पूर्ण अभाव के बीच का कोई रास्ता ढूंढना पड़ेगा। इसके लिये हमको बालक के चारों ओर ऐसा वातावरण और वायुमण्डल प्रस्तुत करना होगा जो उसकी जन्मजात अनुभूति को जाग्रत कर सके। क्योंकि इस प्रकार की अनुभूति जाग्रत किये बिना बालक से यह आशा नहीं की जा सकती कि वह स्वेच्छा से अपने शिक्षक के साथ सहयोग कर सकेगा या और दूसरों के साथ मिल कर समाज के नियमों को सहर्ष स्वीकार कर लेगा।

अतएव बच्चों का स्कूल ऐसे स्थान पर बना होना चाहिये जहां गाड़ियों या टांगों की कर्कश ध्वनि अथवा तरह तरह की बोलियां न सुनाई देती हों। सामाजिक जीवन के विकास के लिये इससे अधिक हानिकारक कोई बात नहीं कि बालक के आसपास जीवन और प्रवृत्तियों के विषय में भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण रखने वाले व्यक्ति रहते हों। स्कूल की इमारतें भी सब ईंट या पत्थर की ही बनी हुई न होनी चाहिएँ, न सब सड़कें और पगडण्डियाँ इत्यादि ही एक प्रकार की हों, क्योंकि इस प्रकार की वस्तुओं से बालक के हृदय में सहज ही यह भावना उत्पन्न

हो जाती है (बालक होने के कारण वह अपनी भावना को व्यक्त तो नहीं कर सकता) कि जीवन केवल एक मशीन की भांति निश्चल, जड़, एवं विभिन्नता रहित है। अतएव स्कूल की स्थिति यदि प्रकृति की गोद में न हो तो प्राकृतिक दृश्यों के निकट तो अवश्य होनी चाहिये, जिससे अपने चारों ओर बढ़ती हुई हरियाली को देख कर बालक जीवन की सर्वव्यापकता का अनुभव कर सके। यदि स्कूल ऐसे स्थान पर हो जहां इस प्रकार के दृश्य संभव नहीं, जैसे कोई मरुप्रदेश, तब भी बालक की प्रारम्भिक अवस्था में उसका शिक्षणालय भीड़ से दूर किसी निर्जन स्थान पर होना चाहिये। वहां निर्जन तथा कोलाहल से दूर शान्ति पूर्ण वातावरण में बालक को प्रकृति की आत्मा के मूल में विद्यमान शान्ति का आभास होगा। यदि यह भी संभव न हो तो कम से कम उस स्थान के चारों ओर फूलों के गमले, लताकुञ्ज या सुन्दर चित्रकारी तो होनी ही चाहिएँ, जो बालक को सृष्टि की सुन्दरता के विषय में कोई पाठ दे सकें।

बाह्य वातावरण के पश्चात हमें वायुमण्डल की ओर ध्यान देना चाहिये। वास्तव में वायुमण्डल* और कुछ नहीं है, वह तो शिक्षक

---

* स्कूल की तरह घर का वायुमण्डल भी सुन्दर और स्वच्छ होना चाहिये। अगर घर में माता-पिता लड़ते झगड़ते रहते हैं, किसी बालक की तारीफ और किसी की बुराई करते रहते हैं, बालक बालक में भेद भाव रखते हैं, बालक के साथ छल-कपट और झूठ से काम लेते हैं तो बालक पर इसका बहुत बुरा असर पड़ेगा। वह माता-पिता पर सन्देह करने लगेगा, उन पर उसका विश्वास न रहेगा। ऐसे दूषित वायुमण्डल में अच्छी आदतें बनाने का उसे मौका न मिलेगा, जो अनुशासन का वास्तविक उद्देश्य है। माता-पिता के व्यवहार को

बालक बाग़ में अपने निरीक्षण का परिणाम लिख रहे हैं।
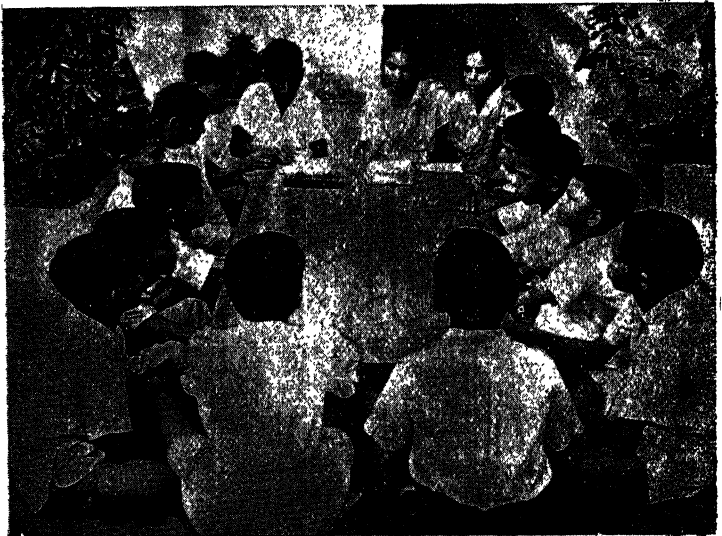
बालक अपनी कैबिनेट में वाद-विवाद कर रहे हैं।

के अन्तर्जीवन का प्रतिबिम्ब मात्र है। शिक्षक अपने आपको कितना ही आडम्बरों से आवृत करले, वह स्वयं अपने को तथा औरों को धोखा देने का कितना ही प्रयत्न करे, पर वास्तविकता को छिपाने में सर्वथा असमर्थ रहेगा। बालक की तीक्ष्ण बुद्धि उसके शब्द-जाल को भेद कर सीधी सतह पर जा पहुंचती है। बच्चे में यह अद्भुत प्रतिभा है कि वह किसी भी व्यक्ति की सच्चाई या झुठाई को तुरन्त ही भाँप लेता है। यही कारण है कि संसार के सब महान् पुरुषों को बच्चों से बड़ा प्रेम रहा है, तथा बच्चों को उनसे।

दिन प्रतिदिन बालकों के सम्पर्क में आने से अनेक शिक्षक यह विश्वास करने लगते हैं कि बालकों में उत्पत्ति की प्रवृत्ति स्वाभाविक होती है। किन्तु वे यदि तथाकथित उत्पात के सही अर्थ समझ लें तो उन्हें तुरन्त अपनी भूल मालूम हो जाए। उत्पात वास्तव में शिक्षक और बालक के पारस्परिक सम्बन्ध में विकार का चिन्ह है। यदि बालक उत्पाती अथवा हठी है तो इसका अर्थ यही है कि शिक्षक की प्रवृत्ति से उसकी प्रवृत्ति मेल नहीं खाती, इस कारण दोनों में विरोध है। मूलतः बालक सदैव मेल का अभिलाषी है, इसलिए शिक्षक का यह कर्तव्य है कि वह अनुशासन के नाम पर बालक को आज्ञा पालन के लिए विवश करने अथवा स्कूल से निकल जाने का आदेश देने से पहले इस विरोध* के मूल कारण को खोजने की चेष्टा करे।

देख कर ही बालक अपनी आदतें बनाता है, जीवन निर्माण करता है। अतः माता-पिता को खूब सतर्क और सजग रहना चाहिये।

—सम्पादक

* अनुशासन सम्बन्धी विरोध को टालने के लिए उचित है कि बालक को जो आज्ञाएं दी जाएं उनका हेतु और कारण उसे साफ़

वास्तव में शिक्षक के लिये उचित है कि बालक के साथ उसका व्यवहार ऐसा हो जैसा किसी अपराधक का अपने आराध्य के प्रति होता है। बालक स्वयं ईश्वर का रूप है, यह भावना हृदय में रखकर यदि विचार किया जाय तो बालक की धृष्टता, समस्त उत्पात, छीना झपटी, उच्चाकांक्षा एवं हठ आदि प्रवृत्तियाँ उसके जागरूक दैवी जीवन की क्रीड़ाएं ही प्रतीत होंगी। कृष्ण की बाल-लीलाओं से हमें जो आनन्द प्राप्त होता है, वही आनन्द हम प्रत्येक बालक की क्रीडाओं से प्राप्त कर सकते हैं। बेचारा बालक भी क्या करे, उसके मन में नाना प्रकार की भावनाएं उठती रहती हैं, जिन्हें वह अच्छी तरह समझ नहीं पाता, अपने भावों को व्यक्त रूप देकर वह अन्धकार से प्रकाश में आने की चेष्टा करता है। शिक्षक के लिए यह अत्यन्त गौरव तथा हर्ष की बात है कि उसे बालक के इन प्रयत्नों को, जिनका ध्येय केवल इतना ही होता है कि वह अपने को समझ तथा जान सके, इतने निकट से

साफ शब्दों में बता देना चाहिये। बालक से सम्बन्धित सभी कार्यों में उसकी राय अवश्य लेनी चाहिए। अगर उससे ग़लती या देर हो जाय तो उसे डांटना नहीं चाहिये। बालक के साथ बालक बनकर रहना चाहिये। जब हम अपने को बड़ा और बालक को छोटा समझते हैं, तभी संघर्ष होता है। बालक के साथ किए हुए वायदों को पूरा करना चाहिए, बालक को व्यर्थ के नियमों और बन्धनों में न जकड़ कर उसे स्वतन्त्र करना चाहिए। स्वतन्त्र बालक कभी अनुशासन भंग नहीं करता। स्वतन्त्रता और अनुशासन दो परस्पर विरोधी चीजें नहीं हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। स्वतन्त्रता और अनुशासन के इस रहस्य को हम समझलें तो फिर अनुशासन की कभी समस्या ही उपस्थित न हो।

—सम्पादक

अध्ययन करने का अवसर मिलता है। क्या प्रत्येक शिक्षा-शास्त्री ने समस्त शिक्षा का ध्येय यह नहीं बतलाया है कि 'स्वयं को पहचानो।'

परन्तु ज्ञान की यह पिपासा तभी जाग्रत होती है, जब बालक के प्रति शिक्षक के हृदय में अगाध प्रेम होता है। इस प्रेम के प्रकाश में सब विरोध-भावनाएं तिरोहित हो जाती हैं। यदि शिक्षक, जैसा आजकल अकसर होता है, जीवन ही इस सारभूत एकता को नहीं देख सकता तो इसका कारण यही है कि अपनी विशिष्ठता अथवा अहंकार की भावना से लदे हुए उसके हृदय में प्रेम के लिए कोई स्थान नहीं रह गया। इसीलिए जब कभी वह बालक को पाठ्य पुस्तकों अथवा रूढियों द्वारा निर्धारित पगडंडी से इधर उधर डिगते हुए देखता है, तभी उसे आकाश गिरता हुआ नजर आता है।

बालकों के सबसे बड़े प्रेमी ईसामसीह का कथन है "प्रेम ही समस्त नियमों की चरम सिद्धि है।" संसार के सभी अन्य महापुरुषों ने इस कथन को सत्यता को स्वीकार किया है। ईसा ने ही कहा है कि ईश्वरीय राज्य अथवा आनन्द के राज्य के सबसे बड़े अधिकारी बालक हैं। जहाँ आनन्द है, वहीं स्वर्ग है, तथा जहाँ स्वर्ग है वहीं आनन्द है। इसलिए अपने तथा बालक दोनों के हित में यही आवश्यक है कि हमारा सारा वातावरण आनन्दमय—स्वर्गीय रहे।

अतएव, जैसा रवीन्द्रनाथ ने कहा है, शिक्षक अपने आपको यह न समझे कि वह एक जेलर की भांति है, जिसका कर्तव्य यही है कि सदैव छड़ी का भय दिखाकर अपने कैदियों को अनुशासन में रखे। वरन् वह तो एक पवित्र बलिवेदी के सम्मुख खड़ा हुआ है जहाँ केवल प्रेम का ही सार्वभौमिक राज्य है। इस अवस्था में अनुशासन के लिए कोई स्थान नहीं है। अनुशासन छिपे हुए भय का प्रतीक है तथा इस भयके भूत को भगाने में केवल प्रेम ही समर्थ है।

संक्षेप में शिक्षक का कर्तव्य है कि ज्ञान के प्रकाश की प्रार्थना करने से पहले वह प्रेम के लिए प्रार्थना करे। तभी रवीन्द्रनाथ के इन शब्दों में अन्तर्हित महान् सत्य का उसे सही अनुभव होगा। "ज्ञानेर भोजन आनन्देर भोजन"—

ज्ञान का भोजन आनन्द का भोजन है।

सज़ा, इनाम, होड़

सज़ा, इनाम और होड़ तीनों ही चीजें बालक को हानि पहुंचाती हैं। लेकिन फिर भी हम इन तीनों पर लट्टू हैं। हमारी यह धारणा है कि सज़ा न रहे तो बालक शैतान और बदमाश हो जाएँ, एक फूटा अक्षर भी पढ़कर न दें, घर और स्कूल में अराजकता फैल जाए। इनाम की प्रथा हटा दी जाए तो बालक उत्साह से काम करना छोड़ दें! होड़ को बन्द कर दिया जाए तो बालकों की शक्तियाँ अविकसित रह जाएँ, उन्हें काठ मार जाए।

सबसे पहले हम सज़ा को लेते हैं, जो तीनों में सबसे भयंकर है। घर और स्कूल में बालक पर जो अत्याचार होते हैं, उनमें सबसे अधिक प्राणघातक है। सज़ा की निरर्थकता सिद्ध हो जाने पर भी घर और शाला में सज़ा का बोलबाला है। हर जगह बालक के साथ क्रूरता और कठोरता का व्यवहार किया जाता है। आज की सभ्य कही जाने वाली दुनियाँ 'पशु-क्रूरता-निवारक' कानून तो बनाती है, लेकिन बालक के साथ रात-दिन जो निर्दयतापूर्ण व्यवहार किया जाता है, उसके लिए कोई कानून नहीं बनाती। नन्हा, निर्बल, बेजबान बालक हमारा मुकाबला नहीं कर सकता, सत्याग्रह नहीं कर सकता, हमारे ख़िलाफ़ कुछ नहीं कर सकता। ऐसे बालक के साथ जोर-आजमाई करना परले दर्जे की निर्दयता और निर्बलता नहीं तो और क्या है? अपने से बलवान के

सामने तो हम भीगी बिल्ली बन जाते हैं, चूँ तक नहीं करते। लेकिन कोमल-हृदय बालक के सामने तीसमारखाँ बनने में हमें ज़रा भी शर्म नहीं आती। जन्म से ही हम बालक को सज़ा देने लगते हैं। हौवा, कौवा, बिल्ली, बूची आदि का डर दिखाकर उसका दम खुश्क कर देते हैं। दो साल की रेखा बिल्ली को देखना तो दूर किनार, बिल्ली का नाम सुनते ही थर थर काँपने लगती है, जैसे भयंकर मलेरिया का प्रकोप हो गया हो। एक दिन बिल्ली की तसवीर जब उसके सामने आयी, तो वह दौड़ कर इस तरह घर में घुस गई, जैसा चूहा बिल्ली को देखकर घर में घुस जाता है!

सज़ा के अनेक रूप हैं। साधारणतया सजा का अर्थ है—स्थूल शरीर को दुःख पहुंचाने के लिए उसे किसी चीज़ से मारना। कभी कभी यह सज़ा इतना भयंकर रूप धारण कर लेती है कि बालक मरता नहीं तो अधमरा जरूर हो जाता है। इसके अलावा अनेक सूक्ष्म सजाएँ भी हैं, जैसे तीर की तरह चुभने वाले शब्द कहना, दिल को ठेस पहुंचाने वाले ताने मारना, सबके सामने शर्मिन्दा करना, निन्दा करना, गलती को बढ़ा चढ़ा कर बालक के सामने रखना, जाति या वंश के गौरव का ध्यान दिलाना, घर या शाला की परम्पराओं की ओर ध्यान खींचना आदि। शारीरिक सज़ा की अपेक्षा इन सूक्ष्म सज़ाओं का बालक के कोमल मन पर बड़ा घातक असर पड़ता है। वह सदा उदास, निराश और असन्तुष्ट रहने लगता है। अन्दर ही अन्दर कुढ़ता रहता है। उसे सदा भय रहता है कि कहीं उससे कोई ग़लती न हो जाए, उसकी जाति, वंश या स्कूल को बट्टा न लग जाए। बालक बेवकूफ़ और नासमझ नहीं होता। वह छोटी से छोटी बात को भी बड़ा महसूस करता है। इसलिए सज़ा का कोई भी रूप क्यों न हो, उसे भारी आघात पहुंचे बिना नहीं रह सकता। इसका मतलब यह हुआ

कि बालक को किसी भी रूप में सज़ा देना उसके साथ भारी अन्याय करना है।

ज़रा उंगली दिखाने, आंखें निकालने और चिल्ला कर बोलने से ही जब बालक के दिल को सख्त चोट लगती है तो फिर हम बालक को सज़ा देते क्यों हैं? इसके बहुत से कारण हैं।

अनेक अन्धविश्वासों और परम्पराओं की तरह सज़ा भी एक अन्धविश्वास है जो सदियों से चला आ रहा है। सज़ा के पक्षपाती कहा करते हैं कि सज़ा से बालक सहनशील बनता है, उसका शरीर सुदृढ़ होता है, वह बहुत जल्दी पढ़ता लिखता है, पथ-भ्रष्ट नहीं होता, बुरी आदतों का शिकार नहीं होता, बार बार ग़लती करने का साहस नहीं कर सकता, नीतिमान् और चरित्रवान् बनता है। अपने अन्धविश्वासों के समर्थन में वे शास्त्रों और वेदों के हवाले देते हैं। इसी चक्कर में फँस कर धार्मिक वृत्ति के लोग बालक को धार्मिक बनाने के लिये सज़ा देते हैं। मेरे दुःख की कोई सीमा न रही, जब मैंने एक गुरुकुल में सन्ध्या करते हुये बालकों को पिटते देखा। हमारे इस अन्धविश्वास में कोई सचाई नहीं है। भला धर्म, नीति और चरित्र का सज़ा से क्या सम्बन्ध? सजा खुद बुरी से बुरी बुराई है, यह किसी को क्या खाक अच्छा बनायेगी। बबूल पर आम का फल लगते किसी ने देखा है क्या? सज़ा में इतना असर होता तो आज दुनियां में फरिश्ते दिखाई देते। यह संसार स्वर्ग बन गया होता।

मनोविज्ञान की दृष्टि से हमारा अपराधी मन हमें सज़ा की ओर घसीटता है। अपने अपराधों के लिये अपने को सजा न देकर हम दूसरों को सज़ा देते हैं। यह बात विचित्र अवश्य लगती है, ले बिलकुल सही। हम रोजाना एक नहीं अनेक अपराध करते हैं, हिमालय जैसी भारी ग़लतियां करते हैं, बात बात में झूठ बोलते हैं, मान-

सिक चोरी करते हैं, और न मालूम कितने कुकर्म करते हैं। लेकिन फिर भी हम अपने को सजा नहीं देते, और न सज़ा के काबिल ही समझते हैं। सजा देना तो दरकिनार, अफ़सोस तक नहीं करते। अपराध और गलती को स्वीकार तक नहीं करते। लेकिन जब बालक से अनजान में, बिना किसी इरादे के अगर जरा सी भूल हो जाती है, तो मार मार कर उसकी चमड़ी उधेड़* देते हैं। यह अत्याचार नहीं तो और क्या है ?

सजा के हिमायती यह भी कहा करते हैं कि हम तो बालक को सुधारने के लिये, उसे कुमार्ग पर जाने से रोकने के लिये, और दूसरों को सबक देने के लिये ही सज़ा देते हैं। यह कोरा ढोंग और भ्रम है। सख्ती से अपराध कम नहीं होते, बल्कि और भी ज्यादा बढ़ते हैं। सुधार के बजाय बिगाड़ होता है। अपराध तो एक प्रकार का रोग है। सज़ा से घटेगा या बढ़ेगा ? पुलिस, अदालत, जेल बढ़ते जा रहे हैं। सज़ाएँ बढ़ती जा रही हैं। लेकिन अपराधों में ज़रा भी कमी नहीं होती। उलटे अपराध दुगुने-तिगुने वेग से बढ़ते जा रहे हैं। हां, यह सही है कि सफ़ा से तात्कालिक शान्ति व व्यवस्था अवश्य स्थापित हो जाती है। लेकिन अंकुश के हटते ही अशान्ति और अव्यवस्था का दौर दौरा शुरू हो जाता है। सज़ा के भय से बालक थोड़ी देर के लिये चुप हो जाता है, लेकिन फिर बाद में वैसा ही करने लगता है। इसका नतीजा यह होता है कि बालक ढोंगी बन जाता है। उसकी बुरी आदतें

---

* ललित के सुशिक्षित पिता ने उसकी एक मामूली सी गलती पर एक दिन क्रोध में आकर तड़ातड़ दर्जनों बेंतें झाड़ दीं। वह फूट-फूट कर रोता रहा, तड़पता रहा। लेकिन पाषाण हृदय पिता पर ज़रा भी असर न हुआ। —लेखक

अधिकाधिक पुख्ता हो जाती हैं। वह लुक छिप कर अपराध करना सीख जाता है। या इतना उद्दण्ड हो जाता है कि जो कुछ करना होता है, सब के सामने खुल्लम खुल्ला करने लगता है। किसी की कुछ परवा नहीं करता।

इसके अलावा जब बालक हमारा कहना नहीं मानता, हमारी इच्छानुसार काम नहीं करता, हमारा सामना करता है, तो हमारे अहङ्कार को चोट लगती है, और हम बिना सोचे समझे बालक को दो चार चपत लगा कर अपने दिल को ठण्डा कर लेते हैं। कई बार ऐसा भी होता है कि जब माता-पिता आपस में लड़ पड़ते हैं, इसका गुस्सा उतारते हैं बालक पर। इसी प्रकार घर में स्त्री या बच्चे से परेशान हुये शिक्षक, कोई विशेष कारण न होने पर भी, किसी न किसी बालक को सज़ा देकर अपना क्रोध शान्त करता है। इस प्रकार बालक को हमने अपना क्रोध शान्त करने का एक साधन बना रक्खा है। उफ़! बालक का इतना अपमान! इतना तिरस्कार!

मेरे ख़याल में बालक को सज़ा देने का सब से बड़ा कारण हमारा अज्ञान है। बालक के स्वभाव और प्रकृति को हम जानते ही नहीं, समझते ही नहीं। हमें पता ही नहीं होता कि बालक अच्छा बुरा जो कुछ भी करता है, उसका असली कारण क्या है? इसलिये बालक जब कोई ऐसा काम करता है, जो हमें अच्छा नहीं लगता, तो हम उसे पीट देते हैं। अगर हम ध्यान पूर्वक बालक के अपराधों के कारणों पर विचार करें तो हमें अपना ही क़सूर दिखाई देगा। कितने ही अपराध ऐसे होते हैं, जो अपराध कहे जाने पर भी अपराध नहीं होते। हमारी कुदृष्टि ही उन्हें अपराध का रूप दे देती है। राई का पहाड़ बना देती है। मान लीजिये कि कोई बालक चुरा कर किसी की चीज़ खा जाता है। कारण की खोज लगा कर पता चलता है कि ग़रीबी के

कारण घर पर बालक को भर पेट भोजन नहीं मिलता, इसलिये वह दूसरे का खाना खा जाता है। ऐसी हालत में बालक का क्या कसूर है? उसे सज़ा देने का हमें क्या अधिकार है? सज़ा तो समाज या सरकार को मिलनी चाहिये, जो ग़रीबी को फलने फूलने देती है। सज़ा माता पिता को मिलनी चाहिये, जो बालक का पालन पोषण करने में असमर्थ होने पर भी बालक को पैदा करते हैं।

सज़ा से बालक को अकथनीय हानि होती है। सज़ा से बालक चालाकी और धोखेबाज़ी सीखता है। झूठ बोलने पर भी सच्चा बना रहने और चोरी करने पर भी पकड़ में न आने की कला सीखता है। सज़ा से बालक की इच्छाशक्ति या तो नष्ट हो जाती है या और दृढ़ हो जाती है। इच्छाशक्ति के नष्ट हो जाने से बालक बिलकुल बेकार हो जाता है। जीवन में कोई काम करने के योग्य नहीं रहता। इसके विपरीत यदि इच्छाशक्ति दृढ़ हो जाती है तो दिल खोल कर बुराई करने लगता है। किसी की एक नहीं सुनता।

अपराध करने पर जब बालक को सज़ा मिल जाती है तो वह क़सूर के बारे में सोचना ही छोड़ देता है। इस प्रकार ज्यों ज्यों सज़ा मिलती है, अपराध की जड़ जमती जाती है और बालक दुर्गुणों की खान बन जाता है। सज़ा से माता पिता और बालक के सम्बन्ध में कटुता आ जाती है। बालक माता पिता से विमुख रहने लगता है, घृणा करने लगता है, और बड़ा होने पर उनका कट्टर शत्रु* बन

---

* ललित पिता की बेतें, लात और घूंसे खा खाकर आज उनका कट्टर शत्रु बन गया है। वह उन्हें पूरी आँखों देख नहीं सकता। उनसे बदला लेने के लिये, उन्हें बदनाम करने के लिये वह नयी नयी और विचित्र योजनाएँ बनाता रहता है। एक दिन तो वह उनसे इतना

जाता है। उनसे कोई वास्ता नहीं रखता उन्हें बदनाम करने में उसे बड़ा मज़ा आता है। सजा देने वाले शिक्षक से भी बालक ऐसा ही बर्ताव करता है।

सज़ा से बालक अनेक रोगों और विकृतियों का शिकार बन जाता है। पिटने वाला बालक ही बड़ा होकर पीटने वाला बन जाता है, जिसके फलस्वरूप सज़ा का ज़हर पीढ़ी दर पीढ़ी फैलता जाता है। सजा ने ही दुनियां को हिंसक बनाया है।

सज़ा से बालक के अन्दर डर बैठ जाता है। रात को उसे गहरी नींद नहीं आती। डरावने स्वप्न आते रहते हैं। वह डरपोक, कायर, नामर्द, दब्बू और चिड़चिड़ा बन जाता है। उसकी बुद्धि को ज़ंग लग जाता है।

पिटने वाला बालक क्रूरता और निर्दयता को ही अच्छा समझने लगता है। स्नेह और सहानुभूति का उसमें नाम तक नहीं रहता। अपने से छोटों और निर्बलों को खूब मारता है। सचमुच सज़ा बालक को राक्षस बना देती है।

उन्नत देशों में बालक को सज़ा देना भयङ्कर अपराध समझा जाता है। यही वजह है कि वहां वीर और शेर बच्चे पैदा होते हैं। अगर हम भी अपने देश में अनेक गान्धी, अनेक जवाहर, अनेक अब्दुल ग़फ्फ़ार खां, अनेक टैगोर, अनेक कलाकार, अनेक सत्याग्रही, अनेक वैज्ञानिक आदि देखना चाहते हैं, तो हमें सजा को अपने घरों से और शालाओं से सदा के लिये बाहर निकाल देना होगा। सज़ा के

बिगड़ा कि ज़ोर ज़ोर से उनके गाल पर दो चांटे लगा दिये और साथ ही बेत मारने की धमकी दी। —लेखक

रहते यह देश गुलाम ही रहेगा। सज़ा गुलामी की जड़ों को खींचती है, उसमें पानी और खाद देती है। सज़ा के रहते कोई अहिंसक नहीं बन सकता। सज़ा के रहते साम्राज्यों का अन्त नहीं हो सकता। सज़ा के रहते शाहियों और इज्मों का खात्मा नहीं हो सकता। सज़ा के रहते ऐसे समाज का निर्माण नहीं हो सकता, जहां न कोई शासक होगा, और न कोई शासित। ऐसी सुन्दर दुनियां का निर्माण करने के लिये बालक को सज़ा देना क़ानूनन बन्द होना चाहिये। बालक को सज़ा देना अक्षम्य अपराध समझा जाना चाहिये।

लेकिन सज़ा न देने का यह मतलब हर्गिज़ नहीं है कि ग़लती, अपराध या मनमानी करने पर बालक को कुछ कहा ही न जाय, उसे बिलकुल खुला ही छोड़ दिया जाय। सज़ा न देने का यह अर्थ भी नहीं है कि बालक किसी को मारने लगे, या जान बूझ कर तोड़ फोड़ करने लगे या और कोई अनुचित कार्य करने लगे, तो उसकी इन बातों पर पर्दा डाला जाये। सज़ा न देने का मतलब तो यह है कि बालक के अपराधों, भूलों, बुरी आदतों आदि समस्याओं को दृष्टि में रखते हुये हल करना चाहिये।

इस भयंकर रोग से छुटकारा पाने के लिए आपको कुछ बातों का ध्यान रखना होगा।

सबसे पहले बालक को बालक ही समझें, अपने जैसा बूढ़ा नहीं। आपकी दृष्टि और बालक की दृष्टि में ज़मीन आसमान का फ़र्क है। बालक से यह आशा न रखें कि वह आपकी सारी बातों को चुपचाप मान लेगा। अपने को बड़ा और बालक को छोटा न समझें। बालक के साथ व्यवहार करते समय अपने बचपन का ज़माना न भूलें। बालक

से कभी ऐसा काम करने के लिए न कहें, जिसे वह न कर सके। बालक जब अपने काम में मग्न हो, उस वक्त उसे कुछ न कहें, कोई आज्ञा न दें।

बालक के आस-पास ऐसी व्यवस्था करदें, जिससे उसे ग़लती करने का, आपको तंग करने का, आपकी चीज़ों को अस्त व्यस्त करने का मौका ही न रहे।

सज़ा देने से पहले खूब सोचलें, बालक के हेतु को समझलें, बालक की भीगी हुई कमीज़ को देखकर चाँटा लगाने से पहले कमीज़ के भीगने का असली कारण मालूम करलें। अपना गिलास आप भरने में कमीज़ पर पानी गिर गया है, तो क्या ग़जब हो गया। आप क्यों नाराज होते हैं उस पर ?

बालक को छोटा समझ कर उसका अपमान हर्गिज़ न करें। आप की तरह उसके भी अधिकार हैं। आप उन्हें क्यों नहीं स्वीकार करते ? जब आप बालक को हेच समझते हैं तभी तो सज़ा देते हैं।

बालक के साथ व्यवहार करने में लापरवाही न दिखाएं। एक दिन एक काम के लिए बालक को सज़ा देना, और दूसरे दिन उसी काम को करते देखकर हँस देना बहुत बुरा है। आपके इस असंगत व्यवहार से बालक असमंजस में पड़ जाता है। उसे अपनी भूल का पता नहीं लगता। वह आप में विश्वास करना छोड़ देता है।

बालक से जो कुछ कहना या कराना हो उसे बिल्कुल स्पष्ठ शब्दों में उसके सामने रखें। शक होने पर पूछ कर तसल्ली कर लें कि बालक ने आपकी बात को अच्छी तरह समझ लिया या नहीं। कई बार ऐसा होता है कि बालक आपकी बात को भली भाँति समझता नहीं, और आप बिना सोचे समझे दो चार चपत रसीद कर देते हैं।

बालक के ग़लती करने पर नाराज़ न हों, बार बार ग़लती करके बालक जो कुछ सीखता है, उसे क़भी भूलता नहीं। अपनी ग़लती आप ठीक करने में बालक को जो आनन्द आता है, उसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते। इसलिए आप जल्दी न करें, सज़ा का सवाल ही नहीं उठेगा।

बालक का पथ प्रदर्शक बनने के बजाय बालक को अपना पथ प्रदर्शक समझें। फिर उस पर हाथ उठाने का आपको ख़याल ही न आयेगा। पाँच साल की अमिता रानी अपने पिता को कितनी ही बार सही रास्ता दिखाती है। एक दिन उसने अपने पिता से कहा—'आप नाराज़ क्यों होते हैं? जो कुछ कहना है शान्ति से कहिए, धीरे से कहिए।" पिता संभल गये। अमिता रानी भी खुश हुई और पिता भी। सभी माता पिता ऐसा करें तो कितना अच्छा हो?

सचेत और सतर्क रहने पर भी पुरानी आदत के कारण अगर आप बालक को सज़ा दे भी दें, तो उसके लिए बालक के सामने अपना दुःख अवश्य प्रकट करें। इससे बालक को सन्तोष होगा, वह अपने दुःख को भूल जाएगा। आप अपनी ग़लती को महसूस करेंगे और फिर वही ग़लती आप से आसानी से नहीं होगी। इस प्रकार सज़ा देने की आदत छूट जायगी।

सज़ा देने के बजाय बालक की आत्मा से प्रेम करना सीखें, प्रेम जादू का असर रखता है। वह कभी असफल नहीं होता, हो ही नहीं सकता। प्रेम का वियोग करके मैंने असाध्य और गये गुज़रे समझे जाने वाले लड़कों को ठीक किया है। दुःख तो यह है कि बालक के दिल में घुसने का हम प्रयत्न ही नहीं करते। झट सज़ा देने के लिए तैयार हो जाते हैं।

सज़ा की तरह इनाम भी बालक को हानि पहुंचाता है। यह सीधा आत्मा का हनन करता है। फिर भी इनाम आज हमारे जीवन का अंग बन गया है। इनाम पर लोगों की इतनी अन्ध श्रद्धा है कि वे इसके ख़िलाफ़ कुछ सुनना गवारा नहीं करते। वे मानते हैं कि इनाम के बिना काम करने में जोश नहीं आता, उत्साह पैदा नहीं होता। वे कहते हैं कि वाह वाह, तारीफ़ और इनाम के बिना काम करने में मज़ा ही नहीं आता। उनकी यह धारणा बिलकुल मिथ्या है। अगर वे बाल जीवन के रहस्य को ज़रा भी जानते होते, तो इनाम की भूलकर भी हिमायत न करते। काम बालक के लिये प्राण वायु है। एटम बम भी बालक को काम से नहीं डिगा सकता। काम के बिना बालक तड़प तड़प कर जान दे देता है। एक तरफ़ काम हो और दूसरी तरफ़ दुनियाँ की सारी दौलत हो, बढ़िया से बढ़िया मिठाइयाँ रखी हों। सुन्दर से सुन्दर कपड़े पड़े हों, तो बालक काम को पसन्द करेगा, दौलत और मिठाइयों और कपड़ों की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखेगा। इसलिए काम के लिये बालक को इनाम का लालच देना उसकी स्वाभाविक वृत्ति की हत्या करना है।

इनाम के चक्कर में पड़कर बालक कर्मयोगी न रह कर दिखावे के लिए काम करने लगता है। उसकी दशा उस शराबी की सी हो जाती है जो शराब के बिना कुछ कर ही नहीं सकता, एक क़दम आगे बढ़ नहीं सकता। इनाम एक प्रकार की रिश्वत है। इनाम बालक को लालची और स्वार्थी बना देता है। इनाम बालक में ईर्ष्या, द्वेष पैदा करता है। बड़े छोटे की भावना जगाता है। इनाम बालक को चोरी और झूठ बोलना सिखाता है, तरह तरह के वहमों में फंसाता है। इनाम के पीछे पागल हो जाने वाला बालक केवल किताबी कीड़ा बन जाता है, और सब बातों में बिलकुल कोरा रह जाता है। बड़ा हो जाने

पर नौकरी के सिवा और किसी काम के काबिल नहीं रहता। समाज देश और विश्व के लिए काम करने की उसमें क़ाबलियत ही पैदा नहीं होती। इनाम बालक की तुच्छ शक्तियों को जगाता है, और उच्च वृत्तियों को दबाता है। काम के लिए काम करने में जो असीम आनन्द मिलता है, उससे वह वञ्चित रह जाता है।

होड़ (प्रतियोगिता) का भी यही हाल है। होड़ बालक को आवश्यकता से अधिक काम करने के लिए मजबूर करती है। इसका नतीजा यह होता है कि बालक का स्वास्थ्य ख़राब हो जाता है। होड़ से बालक में हार जीत की भावना पैदा होती है। होड़ बालक को घुड़दौड़ के घोड़े के समान बना देती है। घुड़दौड़ का घोड़ा घुड़दौड़ के मैदान में तो खूब जौहर दिखाता है, लेकिन घुड़दौड़ के मैदान से बाहर निकल कर उसके लिए दौड़ना तो दर किनार, एक दम चलना भी दूभर हो जाता है। वह तमाम दिन खूंटे से बंधे रहना ही पसन्द करता है। होड़ बालक को दम्भी और सकीर्ण बना देती है। उसकी स्वाभाविकता को नष्ट कर देती है। होड़ बालक के शरीर या मन के किसी अंग का विकास तो खूब करती है, लेकिन उसके सर्वांगोमुखी विकास में बड़ी भारी बाधा डालती है। होड़ बालक में सहयोग की भावना पैदा नहीं होने देती, जो उसके और समाज के विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक है। होड़ से बालक में दृढ़ता और स्थिरता नहीं आने पाती। ख़रगोश और कछुए की कहानी इसका ज्वलन्त उदाहरण है। होड़ ईर्ष्या द्वेष को भड़काती है। आज जो नित नये संहारक अस्त्र-शस्त्र निकल रहे हैं, वे सब इस सत्यानाशिनी होड़ के ही नतीजे हैं।

रुचिकर काम बालक के लिये अमृत है, जीवन ध्येय है। सच्चा,

इनाम और होड़ काम रूपी अमृत के प्याले में ज़हर घोलते हैं। बालक के जीवन को नशीला और विषैला बना देते हैं, जीवन ध्येय से विमुख करते हैं। सज़ा, इनाम और होड़ के जाल में फंसकर बालक का जीवन डाँवाडोल हो जाता है। वह अपने असली रूप को भूल जाता है।

बाल गीता

गीता का महत्व हम सब जानते हैं। इसका पाठ करते हैं, कथा सुनते हैं। लेकिन यह सब होते हुये भी गीता हमारे जीवन में ओत-प्रोत नहीं हो पाई है। निःसन्देह गीता को हम समझ नहीं पाये हैं गीता की झलक हमारे जीवन में दृष्टिगोचर नहीं होती। गीता का महत्व अगर हम ठीक ठीक समझ लेते तो सदियों से गुलामी की चक्की में हम आज पिसते न होते। दरअसल बात यह है कि जीवन का निर्माण, चरित्र का विकास बाल्यावस्था में ही हुआ करता है। बाल्यावस्था के गुज़र जाने के बाद केवल किसी किताब के पढ़ने से, चाहे वह कितनी ही महत्वपूर्ण और उपयोगी क्यों न हो, या उपदेश सुनने से जीवन का समुचित विकास नहीं होता, नहीं हो सकता। चूंकि हमारे जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में हमारे विकास की ओर ध्यान नहीं दिया गया, इसलिये हमारी कितनी ही शक्तियां नष्ट हो गईं, हमारी बुनियाद बिल्कुल कच्ची रह गई। अब हम कितने ही उपदेश सुनें, कितनी ही बाल गीता का पाठ करें, बचपन में पड़े हुये संस्कार हमारा पीछा नहीं छोड़ते, गीता के अनुसार चलने नहीं देते। हज़ार प्रयत्न करने पर भी वे चीन की दीवार की तरह हमारा रास्ता रोक कर खड़े हो जाते हैं, हमें आगे बढ़ने नहीं देते। प्रबल इच्छा रहते हुये भी हम अपने विचारों के अनुसार अपना जीवन नहीं बना सकते। यही कारण है कि आज हम अपने

चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार देखते हैं, प्रकाश की एक धुंधली रेखा भी नज़र नहीं आती। इस घोर अन्धकार और निराशा में आशा की एक ही किरण दिखाई देती है, और वह है बालक। बालक ही हमारी निराशा को आशा में बदल सकता है। बालक ही हमारे सामने फैले हुए इस अन्धकार को छिन्न भिन्न कर सकता है। बालक ही हमें रास्ता दिखा सकता है। बालक ही इस रसातल में पड़ी हुई दुनियां को स्वर्ग बना सकता है। बालक ही गीता के अमर सन्देश को घर घर में फैला सकता है। केवल कह कर ही नहीं, बल्कि अमल करके! यह अद्भुत शक्ति बालक में ही होती है, बड़ों में नहीं।

जो काम आप नहीं कर सके या कर सकते, बालक बड़ी सुगमता से उसे बात की बात में कर सकता है। यदि आप चाहते हैं कि आपका बालक होनहार बने, गीता के अनुसार जीवन बसर करने वाला बने तो आपको बाल गीता के अनुसार बालक के साथ व्यवहार करना होगा, उसके अनुसार उसका लालन-पालन और विकास करना होगा। अगर आपने ऐसा किया तो हम आपको विश्वास दिला सकते हैं कि आपके बालक का जीवन आप ही आप गीता के सिद्धान्तों के अनुसार ढल जायेगा। गीता की फ़िलासफ़ी उसके जीवन का अंग बन जायेगी। वह जैसा कहेगा वैसा ही करेगा। वह न किसी का शोषण करेगा और न किसी को अपना शोषण करने देगा। काम से कभी जी न चुरायेगा। वह कभी जटिल (पेचीदा) न बनेगा, बुराइयों से कोसों दूर रहेगा। हँसते-खेलते, भागते-दौड़ते अपना सब काम करेगा। किसी प्रकार के अंकुश लगाने या जोश दिलाने की बिल्कुल ज़रूरत न होगी। वह सच्चा कर्मयोगी बन जायगा। जीवन की दौड़ में किसी से पीछे न रहेगा।

आप यह न समझें कि बाल गीता से केवल आपके बालक को ही लाभ होगा, और आप कोरे के कोरे रह जायंगे। नहीं, यह बात नहीं है। आपको भी इससे अकथनीय लाभ होगा। बाल गीता के अनुसार अमल करने से आप मताग्रह के ज़हर को, जिसने आपके जीवन को इतना विषैला बना रखा है, अपने अन्दर से निकालने का प्रयत्न करेंगे, अपने विचार दूसरों पर लादने की अनाधिकार चेष्टा न करेंगे। दूसरों की कमियों और दोषों को देखने के बजाय आप अपनी ही कमियों और दोषों को देखना सीखेंगे। दूसरों की आँख का तिल शहतीर बन कर आपकी आँख में न खटकेगा। आपके घर का वातावरण सुन्दर बन जायेगा।

लीजिये, अब बाल-गीता को ध्यान से पढ़िये, इसके एक एक शब्द पर मनन कीजिये और अमल करके इसकी सचाई को आजमा कर देखिये।

(१)

बालक को स्वतन्त्र करें, निर्भय करें।
बालक को बालक की दृष्टि से देखें।
बालक को अपने सब काम आप करने दें।
बालक को अपनी रुचि के अनुसार चलने दें।
बालक को खूब सैर कराएँ, दृश्य दिखायें।
बालक को साफ़-सुथरा रहना सिखाएँ।
बालक को अपनी भूलें और ग़लतियां स्वयं दूर करने दें।
बालक को खतरों का मुक़ाबला करने दें।
बालक को अपनी समस्याएँ खुद हल करने दें।
बालक को अपने निर्णय खुद करने दें।
बालक को अपना पथ प्रदर्शक समझें।

बालक का सुन्दर नाम रक्खें और सदा उसी नाम से बुलायें ।
बालक का ख़याल सब से पहले करें ।
बालक की खामियों और बुराइयों के लिये अपने को दोषी समझें।
बालक की अपरमित शक्तियों में विश्वास रक्खें !
बालक की उचित मांगों को पूरा करें ।
बालक की शिक्षा पालने में ही शुरू करें ।
बालक के लिये बाल-पुस्तकालय व सग्रहालय बनाएँ ।
बालक के साथ बालक बन कर मित्र को तरह रहें ।
बालक के अधिकारों को स्वीकार करें ।
बालक के साथ किये गये वायदों को पूरा करें ।
बालक के सामने सदा प्रसन्न और हँस-मुख रहें ।
बालक के सवालों का सही और स्पष्ट जवाब दें ।
बालक के सामने नमूना बन कर रहें ।
बालक से सम्बन्ध रखने वाले कामों में उसकी राय अवश्य लें ।
बालकसे जो कुछ कराना हो,उसका हेतु व कारण अच्छी तरहसमझा दें।

(२)

बालक को पराधीन, परावलम्बी व परतन्त्र न बनाएँ ।
बालक को नौकरों का गुलाम न बनाएँ ।
बालकको लल्लू,बच्चा,खचेड़ और छुट्टा आदि नामसे कभीन बुलाएँ
बालक को हेच पेच, अक्ल का कच्चा और पापी न समझें ।
बालक को किसी भी प्रकार की सज़ा या लालच न दें ।
बालक को हार जीत के जाल में कभी न फँसाएँ ।
बालक को धर्म नीति का उपदेश न दें ।
बालक को निराशा पूर्ण कविताएँ और कहानियां न सुनाएँ।
बालक को व्यर्थ के नियमों और बन्धनों में न जकड़ें ।

(१३) हिन्दी शिक्षण पत्रिका (मासिक पत्रिका) (व्यवस्थापक शिक्षण पत्रिका, शान्ताराम नारायण लेन, बालकेश्वर बम्बई)

(१४) बाल-हित (मासिक पत्रिका) (विद्याभवन उदयपुर)

(१५) हमारे बच्चे (उर्दू) (प्रीतनगर शाय, निस्वत रोड, लाहौर)

(१६) पेचीदा बच्चे (उर्दू) (,, ,, ,,)

(२) बच्चों के लिये पुस्तकें, पत्र व अल्बम

(१) स्व० गिजुभाई की १८ पुस्तकें (आर० डी० शर्मा एण्ड सन्स, जोधपुर)

(२) श्री दद्दा जी की पुस्तकें (वर्ल्ड न्यूज एजेंन्सी, मिशन चर्च रोड, दिल्ली)

( ) हमारे बालक (पत्र) (करौलबाग, अजमलखां रोड, दिल्ली)

(४) बाल-सखा (पत्र) (इंडियन प्रेस, इलाहबाद)

(५) शिशु (इलाहबाद)

(६) बालक (पुस्तक भण्डार, लहरिया सराय, बिहार)

(७) भाई बहन (जौहरी बाजार जयपुर)

(८) सचित्र भारत (अल्बम) (इण्डियन प्रेस, इलाहबाद)

(९) व्यंग चित्रावली (,,) (........................)

(१०) महापुरुषों, पशु, पक्षियों आदि के चित्र (चित्रशाला प्रेस पूना)

मोण्टीसोरी व किंडर गार्टन के साधन व सामग्री मिलने का पता—

(१) जयचन्द तलक्षी एण्ड सन्स, बुकसेलर्स, एम्पायर बिल्डिंग, होर्नबोई रोड, फोर्ट—बम्बई)

(२) देवीदत्त शर्मा, किंडर गार्टन कार्यालय, भोवाली (नैनीताल)

(३) हैपी एजूकेशन स्टोर, चूड़ीवालान दिल्ली ।

4. Books in English for Parents and Teachers.

1. Radient Motherhood.—Author : Marie Stopes.
2. The expectant mother : Macmillan.
   and Baby's First Months : Publisher
3. Feeding and Care of Baby. Author : F. Fruby King.
4. Nursery years ,, : Susan Isacs.
5. Feeding of Children ,, : Harry Benjamin.
6. On the Bringing up of Children Publishers : Kitabistan, Allahabad.
7. The Secret of Child hood : Longman Green & Co.
8. The Prophet child : ,,
9. Children in Soviet Russia Author : D. Levin.
0 Common Sense and the Child ,, : Mannin.
11. Education of the Child ,, : Ellen key.
12. Century of the Child ,, : ,,
13. The Education of Children ,, : A. Adler.
14. School and the Child ,, : Dewy.
15. The New Treasure—Author : Lord Lytton.
16. Play in Education-Publishers : Macmillan.
17. Education for Life—Author : F. G. Peabody.
18. Our Educatfon ,, . B. Russel.
19. Education of the Whole Man : L. P. Jacks.
20. Education of a New World ; Dr. Montessori.
21. The Path to Freedom in the school : Mac Munn.
22. The School of the Future ,, : K. G. Saiyidain.
23. Activity School ,, : ,,
24. Progressive School ,, : Ryburn

25. New Homes for New India—Publishers: Atma Ram and Sons, Lahore.
26. Tragedy of Education—Author : Edmond Homes.
27. What is and what might be,, : ,,
28. Four Pamhlets on the ,, : Padam Chand. Pre-School Child (Happy School Store Delhi.)
29. Talks to Parents and Teachers ,, : Homer Lane.
30. Happy Childhood—Publisher : Gulab Singh & Sons, Lahore.
31. That Dreadful School—Author: A. S. Neill.
32. The Problem Child— ,, ,,
33. The Problem Parent ,, ,,
34. The Problem Teacher ,, ,,

5. Books etc in English for Children:—

1. Wonderful India—Publishers : Times of India, Bombay.
2. The Story of the World in Pictures ,,
3. Indian Historical Pictures ,, : K & J Cooper, Bombay.
4. Children's India ,, : Y. M. C. A. Lahore.
5. Pictorial Hindustan 4 Parts ,, : The Orient Illustrated Weekly, Calcutta.
6. Mahatma Gandhi's Album ,, : Gandhi Press Publications, Bombay.